तत्व ज्ञान दर्पण

लेखक

परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी महाराज

प्रकाशिका

आचार्या डॉ. कमला देवी

पता :

श्री जयमल सिंह एडवोकेट
कोठी नं. 332, सैक्टर-15ए
हिसार-125001 (हरियाणा)
फोन : 01662-244725

सर्वाधिकार सुरक्षित (मई, 2005)

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी माध्यम से प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना अविधिमान्य होगा।

मूल्य : 15 रूपये

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	गुरु स्तुति	4
2.	प्राक्कथन	5
3.	भूमिका	7
4.	अध्यात्म ज्ञान	9
5.	आत्म तत्त्व	15
6.	परमात्मा तत्त्व	19
7.	मनुष्य का स्वस्थ शरीर और मन	22
8.	संकल्प शक्ति का खेल	27
9.	जीवन लीला	31
10.	प्रवृत्ति व निवृत्ति मार्ग	37
11.	साधु सन्त व सतगुरु की महिमा	43
12.	फकीर लक्षण	54
13.	भक्त को इष्ट का दर्शन	58
14.	पद का औचित्य	67
15.	समय के अनुसार महापुरुषों का ज्ञान	74
16.	ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं	77
17.	मेरा अनुभव व गुरुओं से विनम्र निवेदन	81
18.	अनुभव पर आधारित मेरी पुस्तकें	88
19.	अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची	91

गुरु – स्तुति

गुरु चरण कमल में सीस झुका, दिन रात करुं पूजा सेवा।
गुरु स्तुति नित करुं मन से, गुरु सम कोई और नहीं दूजा।।

गुरुदेव दयाल ने की जो दया, भवसिन्धु से पार किया मुझको।
नहीं वार रहा नहीं पार रहा, सब भांति अपार किया मुझको।।

गुरु दाता दानी अपार महा, याचक जग जीव हुए सारे।
गुरु अर्थ देत गुरु धर्म देत, गुरु काम मोक्ष देने हारे।।

गुरु महिमा जाने न ऋषि मुनि, शिव शारद शेष की पार नहीं।
संसार असार की प्रीति छूटी, गुरु भक्ति सम कुछ सार नहीं।।

बहु बरत किए, बहु दान किए, बहु तीरथ में जाकर भटके।
गुरु चरण कमल से प्रीति नहीं, यम जाल में सो निसदिन लटके।।

प्राक्कथन

हमारा भारत एक धार्मिक देश है। इसमें धर्म सम्बन्धी अनेक शास्त्रों व पुस्तकों का अथाह खजाना भरा पड़ा है। समय-समय पर यहां अनेक ऋषि, मुनि व महापुरुषों का प्राकट्य हुआ है और आज भी दूरदर्शन के माध्यम से या वैसे चारों और धर्म प्रचारकों व महात्माओं के प्रवचनों की बौछार हो रही है तथा आश्रमों में हमेशा भक्तों की भीड़ सी उमड़ी दिखाई दे रही है। लेकिन आज का मानव अधिक तनाव ग्रस्त व अशान्त सा नजर आ रहा है और उनके व्यावहारिक जीवन में कोई बदलाव देखने में नहीं आ रहा है क्योंकि इन आश्रमों की भीड़ में उनके व्यक्तिगत समस्याओं को देखा-समझा नहीं जा रहा है और लोग देखा-देखी अन्धविश्वास में आकर गुरुओं से नाम-दान ले रहे हैं और अधिक बुद्धिमान् लोग शास्त्रों की काल्पनिक बातों व महात्माओं के पाखण्डों को देख-सुन कर इस धर्म पन्थ से कटते जा रहे हैं। वास्तव में धर्म सम्बन्धी रहस्य से लोग अनभिज्ञ हैं और इन्हें सच्चाई कहीं नजर नहीं आ रही है और जो लोग आश्रमों व डेरों से बन्धे हैं वह कट्टर अधिक हो गए हैं और एक-दूसरे के पन्थ से ईर्ष्या व द्वेष रखते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक तत्त्व ज्ञान दर्पण आत्म ज्ञान की जीती जागती तस्वीर है। आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी जटिल ज्ञान को इस पुस्तक रूपी शीशे में साफ दर्शाने की कोशिश की गई है। इस जादुई दर्पण में हर व्यक्ति अपने आत्मिक तत्व की परछाई देख सकता है और अपने अस्तित्व को जान सकता है। शास्त्रीय ज्ञान की जटिलता से दूर इतने सरल व स्पष्ट शब्दों में यह उच्चतम ज्ञान शायद ही कहीं किसी को खोजने पर मिले। योग-साधना करने वाले भक्तों के लिए यह एक उत्तम सोपान है जिस पर चढ़कर मनुष्य अपनी मंजिल तक पहुँच सकता है। यह सब मेरे परम पूज्य गुरू महाराज जी की कृपा का प्रताप है जो ज्ञान की उच्चतम शिखा पर विराजमान है। यह चलते-फिरते सहज

योगी हैं और इनके ज्ञान की खिड़की हमेशा खुली रहती है जिससे ज्ञान की धारें प्रवाहित होती रहती हैं और जो भी जिज्ञासु बनकर इनके सम्पर्क में आता है, वह इनके ज्ञान के छींटों से प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकता है। इसका प्रमाण मैं स्वयं हूँ जो 12-13 वर्ष तक इस ज्ञान के लिए जगह-2 पर भटकती रही और फिर सौभाग्य से इनके सम्पर्क में आते ही इनकी रेडिएशन व आशीर्वाद से शीघ्र ही लाभान्वित हुई और मेरा जीवन सार्थक हो गया। सच तो यह है कि इनकी महिमा का बखान करने के लिए मेरे पास शब्द ही नहीं है। मैं तो बस यही कह सकती हूँ -

कागज पर लिखत न बनत, कहत सन्देश लजात।
अपने हिये से जानियो, मेरे हिये की बात।।

पुस्तक के प्रकाशन में अपना सहयोग देने वाले भ्राता श्री एडवोकेट जयमल सिंह जी अति धन्यवाद के पात्र हैं और पुस्तक प्रकाशित करवाने में अपना आर्थिक सहयोग देने वाले आचार्य एस. ई. जिले सिंह सांगवान व सुश्री वीना गुप्ता सुपुत्री श्री जे.सी. गुप्ता, (यू.के.) के प्रति भी मैं अत्यधिक आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने हमारे कार्य को सार्थक करने में कभी अभाव नहीं आने दिया। इन्हीं शब्दों के साथ आपकी अपनी.....

डॉ. कमला देवी
प्राध्यापिका (संस्कृत)
एम.एम. कॉलेज, फतेहाबाद
दूरभाष : 01667-225520
मोबाइल : 9416475568

भूमिका

मैंने अध्यात्म योग के सहज योग व सहज अवस्था के साधन में अपना पूरा जीवन जिया है। अत: मैं प्यारे साधकों को व साधारण मनुष्यों को यह बताना चाहता हूँ कि यह मनुष्य जीवन अति सुन्दर और बहुमूल्य रत्न है और यहां इस भूमि पर स्वर्ग जैसा आनन्द है। मानव ने अज्ञानता से तरह-2 के विचार और भ्रम शंकाओं को पैदा करके घटिया विचारों को अपने मन में स्थान देकर अपने जीवन को दुखात्मक बना रखा है।

ये घटिया विचार कुछ तो हमने माता-पिता से, कुछ अज्ञानी ज्योतिषियों व पण्डित पुरोहितों से ले रखे हैं जिनको कोई ज्ञान नहीं होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ज्योतिष विद्या नहीं है। जब भृगु ऋषि ने अपना जो अनुभव लिखा था, वह ठीक था परन्तु आज इस विज्ञान को पढ़ना और समझना किसको आता है? यह तो पेट के लिए भोले-भाले लोगों को उल्टी-सीधी बातें कहकर भ्रम-चिन्ता में डाल रहे हैं और लूट-पाट मचाने के काम में लगे हुए हैं। यही बात पण्डित-पुरोहितों की है। पण्डित है कौन ? ये भी जीवों को तरह-2 के बाहरी कर्मकाण्ड में फंसा रहे हैं। अब रही बात पूज्य तथाकथित महात्माओं की, वह भी इस अध्यात्म विषय के अनुभवी बहुत कम है और भेष पूर्ण सन्त व परम सन्त से कम किसी ने नहीं बना रखा है।

जिस ज्ञान के लिए जीव महात्माओं के दरबार में जाकर अपना सिर झुकाते हैं, उस ज्ञान से ये महात्मा लोग बहुत दूर हैं जो महात्मा की वेश-भूषा बनाए बैठे हैं। मैंने इस पुस्तक में सन्तों की पहचान बताकर उनकी बहुत बड़ी महिमा बताई है और वह यह है कि यदि किसी गुरू-पीर महात्मा के प्रति आप श्रद्धा, आस, विश्वास से संगत करते हो और उसका सत्संग सुनते हो और फिर भी आपके जीवन में सुख-शांति नहीं आती है तो समझ लेना कि न वह कोई सन्त-महात्मा है और न आपको कोई विश्वास या श्रद्धा है। बाकी पुस्तक में पढ़कर

देख लेना। मेरे मन में साधु, सन्त, महात्माओं के प्रति बहुत इज्जत व सम्मान है, परन्तु पाखण्डियों के लिए नहीं जो अपने मान-सम्मान व निजी स्वार्थ के लिए भोली-भाली जनता से हेरा-फेरी करके धन इक्ट्ठा करने में लगे हैं।

मैंने इस पुस्तक में अपना अनुभव स्पष्ट लिखा है। यदि आप ध्यान से पढ़ेंगे तो धर्म के विषय में कोई भ्रम-शंका आपको नहीं रहेगा। सब कुछ मनुष्य के मस्तिष्क में भरा हुआ है। इस पुस्तक को लिखने का मेरा मुख्य उद्देश्य यह है कि आज का मानव धर्म के विषय में अज्ञानता में न रहे। मैंने धर्म की सच्चाई बताकर उसका पर्दाफास किया है और मानव को यह चेतावनी दी है कि वह अपने आप को जाने क्योंकि परमात्मा अंश रूप में हर मनुष्य के अन्दर व्याप्त है। किसी सच्चे गुरू की तलाश कर वह अपने आपको पहचाने ओर जगह-जगह न भटके। यदि इस पुस्तक के पढ़ने से आपके भ्रम, शंकाए दूर होंगे तो मुझे अति प्रसन्नता होगी।

कैप्टन लालचन्द
राजस्थान
फोन : 01562-283121, 283521

अध्यात्म ज्ञान

आत्मा-परमात्मा विषय की खोज और इस विषय में अनुभव करने का नाम अध्यात्म ज्ञान है। आदि काल से इस अध्यात्म तत्व की खोज और अनुभव मनुष्य जाति में विशेष प्रकृति के सज्जन करते आ रहे हैं। अलग-अलग खोजियों की प्रकृति, संस्कार और मन की एकाग्रता के अनुसार अलग-अलग अनुभव है। पैगम्बरों, ऋषि-मुनियों व साधु-सन्तों ने अपने-अपने समय में खोज की और जहां जिस अभाव से मानव दु:खी था या जिस बात की आवश्यकता थी, वह ज्ञान अपनी-अपनी समझ, विवेक व अनुभव के अनुसार दिया और वह ज्ञान उस समय के अनुसार व उन लोगों के लिए ठीक था परन्तु समय के साथ मनुष्य की आवश्यकतायें और समस्याएं बदलती रहती हैं। जैसे कहा है -

जमीं बदलती हैं, आसमां बदलता है।
मकीं मुकां जो बदले, समां बदलता है।।
नहीं है एक बतिरे पर, ये जहां कायम।
बदलते रहते हैं सब, जब सारा जहां बदलता है।।

भाव यह है कि आज का मानव बुद्धिमान् है और इस वैज्ञानिक व बौद्धिक युग में सुख-सुविधाओं के सब साधन होने पर भी आज का मानव उदास, चिन्तित, भयभीत व अशांत नजर आता है। धर्म-कर्म की शिक्षा मनुष्य को शान्ति व परम आनन्द देती है। देखने में धर्म कर्म के प्रचार के साधन मन्दिर, गुरुद्वारे, मस्जिद, चर्च हमारे देश में हर सम्प्रदाय में पहले से अधिक है। और बहुत प्रवचन, पूजा-पाठ, प्रार्थना व नवाज जो भी मानव का विश्वास है, सब कुछ हो रहा है फिर भी उसका मन अशान्त है क्योंकि मनुष्य को सुख, शांन्ति, आनन्द व प्रसन्नता देने वाली जो अध्यात्म की विधि है, वह पुराने समय की है। महापुरुषों व पीर पैगम्बरों ने अपने-अपने समय में जिस अध्यात्म

ज्ञान का अनुभव किया था उसी की आज लकीर पीटी जा रही है। आज जो धर्म-कर्म का ज्ञान दे रहे हैं, वे तत्व ज्ञान के अनुभवी बहुत कम सज्जन हैं, जबकि यह विषय अनुभव का है।

मैं अपने ही किसी शुभ कर्म के कारण अध्यात्म ज्ञान की यह बात जानने के लिए कि 'भजन' क्या होता है ? पण्डित फकीरचन्द जी महाराज से मिलने सन् 1956 ई. में होशियारपुर गया था। इससे पहले मैं कई आध्यात्मिक महापुरूषों से भी मिला था परन्तु मुझे उनकी बातों से कुछ सन्तोष नहीं हुआ। पण्डित महाराज जी से कुछ चर्चा हुई तो उन्होंने कहा कि धर्म विश्वास का विषय है और फिर वह सहज समाधि में चले गए। मैं उन्हीं को भगवान् का रुप मानकर, आँख बन्द करके उनके पास बैठ गया। 15 या 20 मिनट में मेरे मस्तिष्क के अगले भाग में जहां बच्चों का तालवा टीप-टीप करता है, मुझे बहुत आनन्द आया जो वर्णन करने में नहीं आता है और मेरा ध्यान ऊपर की तरफ खिंच गया। जब महाराज फकीर चन्द जी समाधि से उठे और हुक्का पीने लगे तब मैंने खड़े होकर अपना हाल और उस आनन्द के विषय में बताया तब उन्होंने फरमाया कि यही वह भजन है जिसके विषय में तुम पूछ रहे थे और इसी को ही अध्यात्म में नाम या सतनाम कहते हैं। तुम सेना में अधिकारी पद पर हो अत: अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहना और फुरस्त के समय सहज साधन में इसका अनुभव करते रहना, एक दिन अपने निज घर जहां से आए हो, पहुँच जाओगे। वह 1956 का दिन और आज तक उस नाम का जिसके महात्माओं ने बहुत से नाम रखे हुए हैं, सहज में अनुभव करता आ रहा हूँ। 1960 के लगभग मेरे गुरू महाराज जी ने मुझे सत्संग कराने की आज्ञा दी थी और कहा था कि जब छुट्टी जाओ तब गांव-गांव जाकर अपने इलाके में सत्संग देना और दु:खी लोगों के भ्रम, शंका दूर कर उनकी सहायता करना। उस समय मेरे साथ और सत्संगियों के साथ जो चमत्कार घटित होते थे मैं उन्हें जब गुरु जी के दर्शन करने जाता था तब बताता था और वह उनमें से बहुत सी घटनाएं

'शिव' व 'मनुष्य बनो' पत्रिकाओं में प्रकाशित करवा देते थे।

मेरा साधन पहले ही दिन से सन्तों के अलख के स्थान से शुरू हुआ था। यह सनातन धर्म और राधास्वामी वाणी में जो माथे के अन्दर अलग-अलग स्थान के साधनों की चर्चा की गई है, वह सब ठीक है परन्तु मुझे यह सब कुछ नहीं करना पड़ा क्योंकि मेरी दुनिया बनी हुई थी और मुझे किसी सांसारिक वस्तु का अभाव नहीं था। छोटी आयु में सूबेदार का पद बहुत जल्दी मिल गया था जो मेरे जैसे साधारण मनुष्य के लिए बहुत बड़ी बात थी। इच्छा या चाह थी कि भजन क्या होता है ? कहने का भाव यह है कि अध्यात्म-ज्ञान के अनुभव में कोई देर या समय लगने की बात नहीं है क्योंकि हम पहले से ही आध्यात्मिक हैं, परन्तु हमारी सांसारिक इच्छाओं के कारण हमको अनुभव होने में देर लगती है। जैसे कबीर साहब ने निम्न शब्द में लिखा है :

साधो एक आप जग माहि।
दूजा करम भरम है कृत्रिम ज्यों दर्पण में छाई।।

जल तरंग जिमि जल में उपजे, फिर जल माहिं रहाई।
काया झांई पाँच तत्व की, बिनसे कहां समाई।।

या विधि सदा देह गति सब की, या विधि मन ही विचारो।
आपा होय न्याय करि न्यारो, परम तत्व निरवारो।।

सहजै रहे समाय सहज में, ना कछु आये न जावै।
धरै न ध्यान करै नहि जप तप, राम रहिम न भावै।।

तीरथ व्रत सकल परित्यागै, सुन्न डोरी नहीं लावै।
यह धोखा जब समझ परै तब, पूज्य केहि पूजावै।।

जोग जुगत ते भरम न छूटै, जब लग आपा न सूझै।
कहै कबीर सोई सतगुरु पूरो, जो कोई समझे बूझै।।

इस अलख के स्थान से साधन करने से मुझे लगभग 1962 में इस मुक्त अवस्था का अनुभव हो गया था। किसी प्रकार का यत्न व कष्ट नहीं उठाना पड़ा। यह सब गुरू कृपा ही समझें। मेरा यह अनुभव कबीर साहब के एक शब्द से मेल खाता है जिसमें लिखा है-

सन्तों सहज समाधि भली।

पूरा शब्द मेरी अन्य पुस्तक में लिखा है और ज्ञान योग की दृष्टि से कबीर साहब ने ऐसा लिखा है -

भाई सोई सतगुरू सन्त कहावे जो नैयनन अलख लखावै,
डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेश दृढ़ावै।
प्राण पूज्य किरिया से न्यारा, सहज समाधि सिखावै।।

द्वार न रुंधै पवन न रोके, नही अनहद ऊरझावै।
यह मन जाय जहाँ लग जब ही, परमात्म दरसावै।।

कर्म करे निकर्म रहे जो ऐसी जुगत लखावै।
सदा विलास त्रास नाहिं मन में भोग में जोग जगावै।

धरती त्याग आकाश हुं त्यागे, अधर मढ़ैया छावे।
सुन्न शिखर की सार सिला पर, आसन अचल जमावै।।

भीतर रहा सो बाहिर देखे, दूजा दृष्टि न आवै।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवागमन मिटावै।।

यह रहनी है एक ज्ञानी की। कबीर साहब के यह शब्द और परमदयाल पंडित फकीरचन्द जी महाराज की भविष्य वाणी कि इस

सार शब्द के सहज अनुभव से एक दिन अपने निज रूप में मिल जाओगे, मुझे 1962 में ही इस मुक्त अवस्था का अनुभव हो गया था। इस परम तत्व तक पहुँचने का मेरा सफर बहुत छोटा था जिसमें चमत्कार, गुरुमूर्ति, साधना के अन्दर सूक्ष्म लोकों के अनुभव, प्रकाश इत्यादि के लोकों से पार केवल सार शब्द का अनुभव होता है। इसी ही शब्द के अनुभव को समझाने के लिए सन्तों ने अलख, अगम और अनाम नाम रखे हुए हैं। इस अलख, अगम और अनाम के सहज योग से मुझे अपने रूप का यानी सुरत का ज्ञान हो गया कि यह क्या तत्व है ? और कहां से आई है तथा सब लोक-लोकान्तरों में खेल खेलने के बाद कहां जायेगी ? यह ज्ञान मैं गुरु कृपा से इस शरीर में रहते हुए, संसार के जीवन का आनन्द लेते हुए, सहज में जीवन मुक्त अवस्था में जीते हुए अब अनुभव कर रहा हूँ, मरने के बाद क्या होगा ? कुछ दावा नहीं कर सकता हूँ। कबीर ने जीवनमुक्त अवस्था के बारे में ऐसा कहा है -

जीवन मुक्त सोई मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहिं, तब लग दुःख सुख भुगता हो।

देह संग ना होवै मुक्ता, मुये मुक्ति कहां होई हो।
तीरथ वारसी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो।।

जीवित भरम की फांस न काटी, मुये मुक्ति की आशा हो।
जल प्यासा जैसे नर कोई, स्वपने फिरे प्यासा हो।।

है अतित बन्धन ते छूटे, जहाँ इच्छा तहाँ जाई हो।
बिना अतीत सदा बन्धन में, कितहुं जानि न पाई हो।।

आवागमन से गए छूट के, सुमिरे नाम अविनाशी हो।
कहें कबीर सोई जन गुरु हैं, काटी भरम की फांसी हो।।

यह अवस्था शरीर में रहते हुए सब तरह के भ्रम-शंका, धर्म-कर्म, नियम-आचार, भक्ति-भाव, राम-रहिम, साधन-अभ्यास से मुक्त होने की बात है। इसमें मनुष्य यदि कुछ करता भी हो तो उसमें लिप्त न हो। किसी भी विचार, भाव, संस्कार के सहारे न हो। सहज में अपने ही निज रूप में अपने ही अन्दर स्थिर रहे। जब तक जीवन है, सब कुछ देखता, सुनता और खाता-पीता रहे। घर-परिवार में सबसे बातचीत करता रहे। यदि आश्रम है तो शिष्यों से भी बातचीत होती रहे परन्तु लगाव अपने निज स्वरूप के सिवाय कहीं न हो। मैं ऐसा जीवन जी रहा हूँ, यानी प्रवृति मार्ग में निवृति का अनुभव कर रहा हूँ। मुझे यह ज्ञान गुरु कृपा से मिला है और आज तक जिनको यह जीवित मुक्त रहने का ज्ञान मिला है किसी जीवित मुक्त पुरुष की संगत से ही मिला है। यह बात और है कि हठधर्मी से वह अपने गुरु का एहसान नहीं मानता हो या कोई भेष या स्वांग बनाकर, सिद्धि शक्ति पाकर, लाखों शिष्य बनाकर बहुत बड़ा महात्मा बन बैठा हो। परन्तु मेरे अनुभव के अनुसार ऐसे सज्जन मुक्त नहीं हो सकते हैं क्योंकि जिनको जीवित मुक्त अवस्था मिल गई हो वो किसी भी तरह का भेष नहीं बनाते हैं अपितु सहज अवस्था में सहज जीवन जीते हैं। यह मेरा अपना अनुभव है, कोई दावा नहीं है क्योंकि उसकी लीला कौन जाने ? वह तो अपरम्पार है। मनुष्य जो उस तक पहुँचेगा, वह अपने को उसका ही रूप बनाकर लीन हो जायेगा।

❑❑❑

आत्म तत्व

मनुष्य की आत्मा के विषय में मैंने जो समझा व अनुभव किया है वह यह है कि हमारे स्थूल, सूक्ष्म व कारण लोक से ऊपर एक लोक है जिसका कबीर साहब ने 'अवगति' नाम रखा है। इसका अर्थ अन्य सब लोक-लोकान्तर गति में है, परन्तु वह स्थिर है, एक रस है। उसमें कोई हलचल या गति नहीं है। उसको परम तत्व तथा सबका आधार भी कहते हैं। वहां से सूरज की किरणों की तरह मौज से किरणें व धारें निकलती हैं और नीचे के लोकों में मण्डल बनाती हुई रचना करती है। उनका झुकाव नीचे की तरफ होता है और यह मनुष्य की सुरत जो उस परम तत्व का ही अंश है, इस स्थूल लोक में आकर स्थूल शरीर धारण कर यहां खेल खेलती है। अब इस बात का आज तक पता नहीं चला है कि यह सुरत कब से यहां आई है और कब तक यहां खेल या लीला करेगी ?

किसी अनुभवी ने यह कहा है कि परमात्मा खुद ही मनुष्य में आकर खेल खेल रहा है। किसी ने कहा है कि सुरत अंश रूप में परमात्मा का ही रूप है जो यहां लीला कर रही है। थोड़ा वर्णन-शैली में अन्तर है। बात एक ही है। जैसे सूर्य यहां नहीं आता है, उसकी किरणें आती है जो सूर्य का काम करती हैं। यदि सूर्य यहां आ जाए तो सब कुछ जलकर राख हो जायेगा। इसी तरह कुल मालिक, परम आधार यहां नहीं आता है। उसका अंश मनुष्य की सुरत जिसको शास्त्रों में विशुद्ध आत्मा कहा है, वह यहां खेल खेल रही है। इस 'अवगति' के विषय में कबीर साहब ने ऐसा कहा है -

''अवगति पार न पावै कोई।''
अवगति नाम पुरुष को कहिए, अगम अगोचर बासा।
ता को भेद सन्त कोई जानै, जा की सुरति समोई।।

अवगति अक्षर जग से न्यारा, जिह्वा कहा न जाई।
वेद कितेब पार नाहि पावै, भूल रहे सब कोई।।

अवगति पुरुष चराचर व्यापै, भेद न पावै कोई।
चार वेद में ब्रह्मा भूले, आदि नाम नाहिं पाई।।

अवगति नाम की अद्‌भुत महिमा, सुरति निरत से पाई।
दास कबीर अमरपुर वासी, हंसा लोक पठाई।।

यह अवगति लोक सतलोक से ऊपर है। सतलोक शब्द और प्रकाश का है। यह सतलोक तथा अन्य जितने भी लोक स्थूल, सूक्ष्म और कारण के हैं, सब इस अवगति लोक की किरणों से बनते हैं, मिटते हैं तथा पुनः नए बनते रहते हैं। यह अपरम्पार लीला है मुझे सुरत शब्द का सफर करते बहुत समय हो गया है। अभी तक मेरे को कुछ समय यानी पाँच दस मिनट तक इसका अनुभव हुआ है जिसमें सुरत शब्द में लीन हो जाती है फिर उत्थान होकर शब्द प्रकट होकर सुरत का बोध होकर चेतनता आ जाती है।

एक बार तो यह अनुभव लगभग 1971-72 में हुआ था जिसके बारे में मैंने अपने गुरू जी को बताया था। तब उन्होंने कहा कि अभी आपको बहुत काम करना है। आप सत्संग भी मुक्त अवस्था में रहते हुए प्रवृत्ति मार्ग पर यानी इस दुनिया का जीवन सुन्दर बनाने पर देते रहो। इस निवृत्ति मार्ग में पहुँचने की चाह ठीक नहीं है। दूसरी बार मैं 11.4.2005 को वैशाखी सत्संग में होशियारपुर गया हुआ था। शाम के लगभग 7 बजे मुझे संगत को सत्संग देने को कहा गया। सभी आचार्यगण और प्यारे जनरैल साहब स्टेज पर बैठे हुए थे। मैंने कुर्सी पर बैठकर सत्संग दिया। उसके बाद जरनैल साहब ने संगत को ध्यान में बैठा दिया। मेरी सहज समाधि बनी रहती है। मैं भी वहां बैठा रहा। विचार आया कि यह शब्द सुनने वाली सुरत कहां से आ रही है?

इस विचार के साथ ही मेरी सुरत ऊपर चढ़ गई और मैं बेहोश हो गया। उसी बेहोशी में कुर्सी से आगे गिर गया। संगत ध्यान में बैठी थी। जब ध्यान समाप्त हुआ तब स्टेज पर बैठे आचार्यगण व जनरैल साहब मुझे गिरा हुआ देखकर दौड़ कर आए। किसी ने मुझे हाथ लगाकर हिलाया तब मुझे थोड़ा होश आया और मैंने महसूस किया कि मेरी सुरत शब्द को सुन रही है। मैंने उसी ही सहज समाधि से बोला कि मैं अब नाम से जुड़ा हुआ हूँ। तब किसी ने जोर से कहा कि आपके सिर से खून निकल रहा है। तब मुझे पूरी चेतनता आई और मैं बैठ गया। देखता हूँ कि सभी आचार्य व जनरैल साहब मेरे चारों तरफ खड़े हैं। मेरे सामने हारमोनियम बाजा था जिससे टकराने से मेरे सिर में चोट आ गई थी और वहां से खून निकल रहा था। जल्दी ही मुझे डॉक्टर के पास ले जाकर पाँच टांके लगाए गए व पट्टी कर दी गई। मुझे कोई दर्द या तकलीफ नहीं हुई। मैं चाहता था कि दूसरे दिन सत्संग में अपने इस अनुभव के बारे में संगत को बताऊं कि किस तरह मेरी सुरत कुछ मिनट तक उस महातत्व का अनुभव कर उसी का रूप बन गई थी, परन्तु संगत तो मेरे सिर में लगी चोट का अफसोस करने के लिए ही मेरे पास आने लगी। अत: मुझे जल्दी ही वहां से वापिस आना पड़ा। यह घटना मरे साथ दूसरी बार घटित हुई जिसमें यह बून्द रूप परमात्मा का अंश यह सुरत कुछ समय के लिए उस परम तत्व, सर्वाधार, कुल मालिक या अमरापुरी में जाकर उस समुद्र रूप परम तत्त्व में इस शरीर के रहते हुए लीन हो गई थी और फिर अपने आप उत्थान से इस शरीर में चेतनता रूप में वापिस आ गई। अब मरने के बाद क्या होगा ? कुछ कह नहीं सकता हूँ। उस देश के विषय में कबीर के बहुत से शब्द है:-

अब हम अवगति से चल आए, काहु न मर्म भेद नहीं पाए।
है तो विदेह देहधर आए, कायाधरी कबीर कहलाए।
जन्म-जन्म के बिछड़े हंसा उन्हें चेतावन आए।

इसी ही अवगति देश को महात्माओं ने अपने-अपने शब्दों में अमरापुरी, परम धाम, सर्वाधार, एक रस, कूटस्थ और राधास्वामी धाम आदि कह कर वर्णन किया है।

मेरे इस अनुभव से स्पष्ट है कि मनुष्य में यह सुरत जो परमात्मा के अंश रूप में सबमें खेल रहा है, यह कोई ऑरगन (स्थूल अंग) या शरीर का हड्डी या मांस का कोई हिस्सा नहीं है। यह एक किरण या धार है या फूल की खूशबू जैसी है। इसी से ही मनुष्य के अन्दर विचार, भाव, चेतनता, विवेक, बुद्धि व अनुभव होते रहते है जो कुछ समय कायम रहकर खुद बा खुद मिटते रहते हैं और नए-नए पैदा होते रहते हैं। इसके लिए कबीर साहब ने कहा है -

''समझत बने कथन नाहि आवे, मन वाणी अलसानी।''

इस आत्म ज्ञान या सुरत तत्त्व के ज्ञान में यह ही अनुभव करना है कि यह क्या है ? कहां से आती है ? और अन्त में योग साधना से उस परमात्मा तत्व में अपने आप को लीन करना ही अन्त है। उसके बाद कहने सुनने की कोई बात ही नहीं रह जाती। कौन कहे ? और किसको कहे ? जैसे पानी का बुलबुला पानी से बना और फिर पानी में ही मिल गया। तो यह आत्मा तत्व क्या हुआ ?

''जल तरंग जिमि जल में उपजै, फिर जल माहि रहाई।''

जब मनुष्य को गुरु कृपा से अपने असली स्वरूप का अनुभव हो जाता है तो वह इस जीवन को एक खेल समझ कर बेफिकर, बेगम व हंसी-खुशी का जीवन जीता है और दूसरों के कार्यों से दु:खी, सुखी नहीं होता। उनकी मजबूरी समझता है और उनमें कोई दोष नहीं देखता। साक्षी भाव से सब देखकर आनन्द लेता रहा है। यानी वह मुक्त अवस्था का जीवन जीता है। मैं गुरु कृपा से 1962 से इस अनुभव के बाद मुक्त जीवन जी रहा हूँ।

❑❑❑

परमात्मा तत्व

इस परमात्मा तत्व के विषय में बहुत से महात्माओं ने अपनी-अपनी पुस्तकों में बहुत कुछ लिखा है परन्तु वह सब बुद्धि तथा अनुमान के आधार पर ही कहा जा सकता है क्योंकि मेरे अनुभव के अनुसार वास्तविक स्थिति यह है कि जो भी इस परमात्मा तत्व या महातत्व की योग साधना से खोज करने गया तो अन्त में अपनी सुरत या आत्मा तत्व को उसी में लीन कर गया। जो कुछ बुद्धि या अनुमान से किसी ने लिखा है, वह सच्चाई अनुभव के आधार पर नहीं हो सकती है। मैंने सुरत शब्द के साधन को अलख लोक से शुरू किया था। यह अलख, अगम ओर अनाम शब्द सन्तों ने समझाने के लिए बनाए हैं। अलख जिसे लखा नहीं जा सकता। बस जहां एक सार शब्द है और उसको सुनने वाली सन्त की सुरत है। अगम जिस शब्द को सुनते-सुनते कोई अन्त ही न आए, बस एक समता बनी रहती है और सुरत को ही उसका बोध बना रहता है। मैंने लम्बे समय तक इस अगम लोक का अनुभव किया है। और तीसरी अवस्था अनाम की है जिसका कोई नाम नहीं है। इस हालत का शरीर रहते हुए मैंने जीवन में दो बार कुछ मिनट तक अनुभव किया है। जैसे राधास्वामी वाणी में कहा है -

''सुरत समानी शब्द में, ताहि काल न खाये।''
'सुरत हुई अतिकर मगनानी, पुरुष अनामी जाये समानी।'

तो उस परमतत्व या महातत्व को मैंने क्या समझा है ? सच्चाई यह है कि उसके विषय में मैं बिल्कुल कोरा हूँ। वैसे समझने के दर्जे पर पूरी आयु मेरा सुरत-शब्द का सहज साधन अपने आप होता रहा है। सतलोक से आगे अलख व अगम लोक का सफर किया और अब जब अनाम का अनुभव हुआ तो ज्ञान, ध्यान, साधन, सुरत, शब्द सब गायब हो गए। अब सहज साधन तो अपने आप होता रहा है,

परन्तु यदि साधन में यह जानना चाहूँ कि यह शब्द को सुनने वाली क्या वस्तु है और कहां से आती है ? तो वहां पर 'चिराग गुल और पगड़ी गायब' वाली बात है। यानी यह आत्मा या सुरत तत्व परमात्मा तत्व जो सुरत का निज घर हैं, उसमें मिल जाती है। इस विषय में मुझे कोई भ्रम या शंका नहीं है क्योंकि दो बार मैंने ऐसा अनुभव किया है कि जब मैंने अपनी सुरत के बारे में जानना चाहा तो मैं उस परम तत्व में गुम हो गया। कोई शब्द, सुरत यानी अपना खुद का अनुभव या बोध नहीं रहा। सब खेल ही खत्म हो गया परन्तु फिर चेतनता आई, सुरत-शब्द के अनुभव का बोध हुआ और समझ, विवेक, बुद्धि आकर होश हो गया।

उस परम तत्त्व व अवगति लोक में कोई हलचल नहीं है, बस हिलोर होती है। अपने आप मौज से किरणें निकलती हैं जो सतलोक तथा नीचे के लोकों में मण्डल बना-बना कर अपना खेल खेलती हैं। उनका झुकाव नीचे की तरफ होता है। आखिर वे खेल खेलती हुई इस स्थूल लोक में आकर शरीर, मन, आत्मा व परमात्मा का अंश रूप सुरत तत्व रूप में मिल कर यह खेल खलती हैं। यह लोक एक नाटकशाला है जिसे मैंने महर्षि शिवव्रतलाल जी के शब्द में लिखा है।

ऊपर बहुत से सूक्ष्म लोक हैं जिनमें भिन्न-2 लीला हो रही है। ध्यान समाधि लगाने वाले योगी साधक इन सूक्ष्म लोकों के अनुभव में आनन्द लेते रहते हैं और इन सूक्ष्म लोकों के मनानन्द, आत्मानन्द व ज्ञानानन्द में उलझ जाते हैं। कोई अनुभवी गुरु ही इन्हें वहां से निकाल कर सतलोक में पहुंचा सकता है। सतलोक की सत्ता इन सब सूक्ष्म लोक व स्थूल लोक में काम कर रही है। सतलोक का यहां प्रतिबिम्ब या छाया मात्र है। सतलोक शब्द और आकाश का मण्डल है। इसका विनाश नहीं होता, बाकी सब लोक बनते व बिगड़ते रहते हैं। इस स्थूल लोक में परमात्मा की अंश रूप यह सुरत है जिसका नाश नहीं होता है बाकी सब कुछ बनता व बिगड़ता है। रुप बनता रहता है व नष्ट होता रहता है। यह सब परमात्मा का खेल है जिसका पूरा भेद

कोई नहीं पा सका है।

यह अलख, अगम और अनाम के साधन और अनुभव सन्तों के हैं। सन्त गति का मनुष्य कोटिन में कोई एक होता है जो समस्थिति में रहकर साक्षी भाव से जीवन लीला का अनुभव करता है। वास्तव में यह आत्मा-परमात्मा तत्व के विषय का ज्ञान लिखने व जुबान से बताने की बात नहीं है। यह अनुभव का विषय है जो किसी पूर्ण अनुभवी की संगत में बैठकर, जानकर अनुभव किया जा सकता है। जहां तक परमात्मा के विषय के ज्ञान की बात है जो परमतत्व यानी Super most elements है तो उसको जानने के लिए जब साधना में आगे बढ़ता हूँ, तब मैं या मेरी सुरत उसमें ही लीन हो जाती है और सब खेल ही खत्म हो जाता है। तो इस विषय में यह कहा जा सकता है कि वह परमात्मा अपरम्पार है। उसका अन्त या पूरा ज्ञान आज तक कोई नहीं जान पाया है। यदि किसी ने उसके विषय में कुछ कहा या लिखा है तो अपने अनुमान से कहा या लिखा है क्योंकि उसका अनुभव करके वापिस आकर किसी ने अपना हाल नहीं बताया है कि वह अब कहां गया है और अब क्या सुख या दु:ख भोग रहा है?

दूसरा मेरा अनुभव यह है कि अब जो महापुरूष विराजमान हैं जो मानवता को अध्यात्म विषय का ज्ञान दे रहे हैं, वे सज्जन भी यह बात नहीं बता सकेंगे कि पहले जन्म में वे कहां थे और क्या थे और अगले जन्म में कहां जायेंगे ? यदि किसी सज्जन को कुछ जानकारी होती भी है तो वह मेरे मतानुसार मन का मण्डल है। मन पर जैसे संस्कार पड़े होते हैं, वैसा ही उसे भासता है जो सत्य नहीं हो सकता है।

❑❑❑

मनुष्य का स्वस्थ शरीर और मन

इस लोक में सबसे पहले यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसका शरीर व मन स्वस्थ हो तभी वह सुख, शांति व प्रसन्नता का जीवन जी सकता है और इस आध्यात्मिक विषय का अनुभव भी वही सज्जन कर सकता है जो शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ है। जैसे कहा है-

''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है।''

''तन्दुरूस्ती हजार नियामत और एक रोग हजार आफत।''

मन, बुद्धि और विचार भोजन से बनते हैं। यदि भोजन सादा, सात्विक और जल्दी पचने वाला होगा तो मन पवित्र, बुद्धि निर्मल व विचार उच्च होंगे। इस भोजन के विषय में हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि, डॉक्टर, हकीम, वैद्यों ने शास्त्रों में बहुत कुछ लिखा है। वैसे धार्मिक दृष्टि से इसे तीन भागों में बांटा गया है - सात्विक, राजसिक और तामसिक।

सात्विक भोजन वह है जो बिल्कुल सादा व आसानी से पचने वाला हो। इससे पाचन शक्ति ठीक रहती है व शरीर स्वस्थ रहता है। चाय, कॉफी, शराब, अन्य मादक पदार्थ, चटपटा भोजन व मांस आदि राजसिक भोजन में आते हैं। वैसे लहसुन व प्याज भी राजसिक भोजन में गिने जाते हैं, परन्तु आज के युग में रासायनिक खाद व कीटनाशक जहरीली दवाईयों का प्रयोग अधिक होने से यह लहसुन गुणकारी भी है जो हमें वायु के प्रकोप से बचाता है परन्तु इसका अधिक सेवन कामुकता को बढ़ाता है व मन को चंचल करता है। अत: जवान बच्चों को इसका परहेज रखना चाहिए। मांस का सेवन करने से पशुओं जैसे भाव जैसे क्रूरता, कठोरता, क्रोध आदि बढ़ जाते हैं क्योंकि अन्न का शरीर व मन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसे कहा है-

''जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन।''

''जैसा पीवे पानी, वैसी बोले वाणी।''

हर प्रकार का बासी, गला-सड़ा व कई दिन का रखा हुआ बन्द भोजन तामसिक भोजन है। इससे पाचन शक्ति खराब हो जाती है जिससे शरीर रोगी व मन मलिन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त भोजन भूख लगने पर ही खाना चाहिए और जहां तक हो सके अकेले या सबके साथ मिलकर खाना चाहिए, क्योंकि भोजन पर देखने वाले की नजर का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उसके भाव भोजन पर पड़ने से वह दूषित हो जाता है। इसके विषय में एक कहावत है कि -

एक राजा के पेट में हमेशा दर्द रहता था। उसने डॉक्टर, वैद्य, हकीमों से बहुत इलाज करवाया लेकिन कोई आराम नहीं हुआ। एक दिन एक फकीर वहां आया। वह देखते ही राजा की बीमारी समझ गया। उसने कहा मेरे सामने राजा का खाना लाया जाए। नौकर-चाकर राजा का थाल परोस कर ले आए जिसमें तरह-तरह के व्यंजन थे। फकीर ने भोजन को कपड़े से ढ़क दिया। थोड़ी देर बाद कपड़ा हटाया तो थाल बिच्छुओं से भरा हुआ था। फकीर ने कहा - आप हर रोज यह खाना खाते थे जिससे आपको पेट दर्द होता था। राजा के पूछने पर फकीर ने कहा कि यह सब नौकरों की नजर का दोष है। यह सब आपके खाने को रोज देखते थे और उनके मुंह में पानी भर आता था। इससे उनका भाव खाने में जाता था और भोजन दूषित हो जाता था। अत: भोजन या तो एकान्त में अकेले करें या दूसरों को भी साथ शामिल कर लें।

सन्तों ने स्थूल शरीर के भोजन के साथ-साथ सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर के भोजन की आवश्यकता को भी बतलाया है क्योंकि हर मनुष्य इन तीन शरीरों से बना हुआ है। स्थूल शरीर का भोजन अन्न और वायु है जिसे अन्नमय कोष व प्राणमय कोष भी कह सकते हैं। सूक्ष्म शरीर का भोजन विचार व ज्ञान है जिसे मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष कह सकते हैं। कारण शरीर का भोजन केवल आनन्द है जिसे आनन्दमय कोष कहा जा सकता है।

जिस प्रकार यह स्थूल शरीर अनुकूल व पौष्टिक भोजन के बिना स्वस्थ नहीं रह सकता इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर (मन) सुन्दर विचारों व शिव संकल्प के बिना स्वस्थ नहीं रह सकता और कारण शरीर (आत्मा) अनुभव, विवेक व एकाग्रता के बिना स्वस्थ नहीं रह सकता है।

अत: इस शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ऐसा अनुकूल भोजन किया जाए जिससे पाचन शक्ति ठीक रहे, नहीं तो शरीर रोगी हो जाएगा। जरूरत से ज्यादा व कम खाना दोनों हानिकारक है। अत: समता की आवश्यकता है। इसी प्रकार मन का स्वास्थ्य भी तभी सही रह सकता है जब व्यर्थ के संकल्प-विकल्प मन में न उठे और जो भी विचार उठे वह आसानी से पच जाए या व्यावहारिक जीवन का अंग बन जाए। ऐसा न होने पर मनुष्य बहमी व शकी हो जाएगा और यह भ्रम व संशय मनुष्य के मन के भारी रोग है। इसी प्रकार किसी बात को ठीक से न समझ कर अज्ञानता से काम करना कारण शरीर का रोग कहलाता है। इससे मनुष्य अशान्त रहता है।

जिस प्रकार डॉक्टर, हकीम या वैद्य शरीर के रोगों की जांच कर उचित दवा देकर उसका निदान कर देते हैं, उसी प्रकार सन्त मन व आत्मा के डॉक्टर होते हैं जो मनुष्य की प्रकृति, आवश्यकता व परिस्थिति देखकर उचित उपाय बताकर उसे स्वस्थ कर देते हैं। वैसे गृहस्थियों में अधिकतर शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य की गिरावट रहती है। इसके लिए साधक को अपने मस्तिष्क को मजबूत बनाने के लिए कुछ दिन बड़ का दूध प्रात: रोज 10 या 15 बून्द बताशे में डालकर सेवन करना चाहिए या ग्वार पाठे के एक पत्ते की गिरी रोज खानी चाहिए अगर यह न कर सके तो कागजी बादाम की पांच सात गिरी रोज रात को पानी में भिगो कर सुबह ठीक से चबा कर खानी चाहिए या बादाम रोगन एक चम्मच दूध में डालकर पीना चाहिए। यह सब अपने आध्यात्मिक गुरु से सलाह लेकर ही सेवन करना चाहिए और मानसिक व शारीरिक ब्रह्मचर्य का पूरा पालन करें क्योंकि अनुभवी

गुरु सामने वाले की प्रकृति और दिमाग की हालत देखकर उचित सलाह देता है। यह आध्यात्मिक योग बिल्कुल स्वस्थ मस्तिष्क वाले सज्जनों के लिए है। आजकल गुरुओं के आश्रम में तो यह देखा-देखी एक भेड़चाल बन गई है। वास्तव में सब लोग साधन, योग, अभ्यास के अधिकारी नहीं है। सत्संग सुनते-सुनते समय आने पर अधिकारी बना जा सकता है। यह आस-विश्वास का मार्ग है। अत: कभी रविवार को, दो सप्ताह में या महिने में जब समय मिले सत्संग सुनते रहना चाहिए। नशे के सेवन से बचना चाहिए जिससे शरीर व मन स्वस्थ रहेगा। दूसरा जहां तक हो सके जानबूझकर किसी का मन नहीं दुखाना चाहिए क्योंकि सभी में वह परमात्मा बैठा है। जो बुरा सोचेगा या कहेगा, उसी का ही बुरा होगा। जो भला सोचेगा, सदा भला होगा। बाकी यदि समय का अभाव है तो यह नुक्ता याद रखो -

''सुबह शाम राम-राम, दिन भर काम और रात को आराम।''

और यदि किसी के पास समय है तो किसी सन्त महापुरुष का सत्संग सुनते रहना चाहिए व दिन में दो या तीन बार साधन अभ्यास करना चाहिए। इससे आपको शान्ति मिलेगी। जैसे कहा है -

सतगुरू शब्द स्वरुप है, रहे अरस (आकाश) मंझार।
तू भी सुरत रुप है, रहो गुरु के लार।।

आजकल सन्तों ने आत्म-ज्ञान विषय को बहुत ही आसान व सरल कर दिया है। मनुष्य चाहे किसी भी जाति का हो, गोरा हो या काला हो, बड़ा हो या छोटा हो, हिन्दू हो या मुसलमान हो - यह ज्ञान सन्तों के दरबार में जाकर ले सकता है। उनका सत्संग सुनकर, उस पर अमल कर के जब जीवन सुन्दर, सुख व आनन्द का बन जाए तब उस आत्म-तत्व को खुद ध्यान में अनुभव करने का प्रयास करना चाहिए। जब मनुष्य को अपने आत्म तत्व का अनुभव हो जाता है तब वह इस शरीर में रहते हुए ही एक मुक्त अवस्था का अनुभव

कर सकता है। यह बात कुछ कठिन नहीं है, बहुत आसान है और कुछ करने धरने की बात भी नहीं है क्योंकि मनुष्य पहले से ही आध्यात्मिक है। मनुष्य के पास शरीर, मन, आत्मा और सुरत जो परमात्मा का छोटा अंश है, पहले से ही हाजिर है। प्यारे सज्जनों! मुझे जीवन में इस तरह की कोई कठिनाई नहीं आई क्योंकि मैं जवान व शरीर से स्वस्थ था। मेरी सांसारिक जरूरते सब पूरी थी। मुझे तो किसी कारणवश बस इस भजन को जानने की लगन लग गई और इस लगन व तड़फ के कारण मैं घूम फिर कर अपने गुरु पण्डित फकीरचन्द जी के पास पहुँचा और जाते ही मुझे इसमें सफलता मिल गई और मेरा जीवन ही बदल गया।

❑❑❑

संकल्प शक्ति का खेल

यह लोक जिसमें हम जी रहे हैं, संकल्प शक्ति का है। जैसे जिस सज्जन के विचार होंगे, जैसी सोच होगी, वैसा ही उसका जीवन बन जायेगा। मनुष्य के मन से विचारों की धारें हर समय निकलती रहती हैं। अत: जो जैसा सोचेगा, वैसा ही फल उसको मिलेगा। जिसके विचार आशावादी और सकारात्मक होंगे, उसका जीवन सुखात्मक, प्रसन्नता, समृद्धि, आनन्द व शान्ति का होगा और जिसके विचार निराशावादी, घटिया व नकारात्मक होंगे, उसका जीवन दु:ख, तकलीफ, कष्ट व चिन्ता से भरा होगा। जैसे तुलसीदास ने कहा है -

''जहां सुमति तहां सम्पत्ति नाना।
जहां कुमति तहां विपत्ति नादाना।।''

जिस घर में आपस में प्रेम, प्यार, आदर व सम्मान है और जो हर कार्य को एक मत होकर करते हैं, उस घर या परिवार में हेमशा सुख-शान्ति, आनन्द व खुशहाली रहती है। उस घर में किसी चीज का अभाव नहीं रहता तथा धन के भण्डार भरे रहते हैं। इसके विपरीत जिस घर-परिवार के मनुष्य आपस में नाराजगी, मन-मुटाव, ईर्ष्या-द्वेष व लड़ाई-झगड़े के घटिया विचार रखते हैं, उस घर-परिवार में हमेशा कष्ट, दु:ख, महामारी, अकाल, लड़ाई-झगड़े व तरह-तरह की दुर्घटनाएं होती रहती हैं और मनुष्य का जीवन दु:खों, चिन्ताओं व समस्याओं से गुजरता है। हम गृहस्थी हैं। घर में कई सदस्य रहते हैं। सबके स्वभाव, प्रकृति व आदतें भिन्न-भिन्न हैं। घर में जब आपस में किसी बात से या दूसरे के काम से नाराजगी हो जाती है तब हमारे विचार अच्छे नहीं रहते हैं। और उस नाराजगी की हालत में जो घटिया या हल्के विचार चुपचाप सोचे जाते हैं, उन विचारों की तरंगे रेडियो नियम की तरह ऊपर आसमान में जाकर किसी स्थान से टकरा कर वापिस हमारे घर में ही आ जाती है और घर में रोग, धन का अभाव,

दुर्घटना, कोई झगड़ा, मुकदमाबाजी, किसी दु:ख या परेशानी के रूप में आते हैं। अत: हमको हमेशा सुन्दर-सुन्दर विचार रखने चाहिए ताकि घर में कभी कोई दु:ख-तकलीफ न आए। यहां सब खेल ही संकल्प व विचारों का है। यह बात सन्त महापुरुष अपने सत्संगों में बताते रहते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि सन्त है कौन ? सन्त वह है जो समस्थिति में जीवन जीता है। वह एक चपड़ासी, किसान, मजदूर, आई.ई.एस. भी हो सकता है। बात सम स्थिति में रहने वाले व तत्व ज्ञान के पूर्ण अनुभव की है। यह बात नहीं है कि जिस महात्मा के लाखों चेले हों, वह सन्त है। जैसे कबीर साहब ने कहा है -

''ऐसी अन्धी दुनिया है, जाने न सन्त असन्त।
जाके संग दस बीस हैं, ता का नाम महन्त।।''

आजकल जगह-जगह महात्मा बड़े-बड़े डेरे व आश्रम बनाए बैठे हैं और हजारों, लाखों लोगों को अपने पीछे लगाए हुए है और फिर अखबारों में इन सन्त, महापुरुष, शंकराचार्य व मुनि कहलाने वालों के घटिया काम पढ़ने में आते हैं जो एक साधारण मनुष्य के लिए भी लज्जा व शर्म की बात है। दुनिया के दु:खों से सताए लोग इन महापुरुषों का सहारा लेते है और फिर इनके इन घटिया कार्यों को देखकर लोगों का धर्म-कर्म से विश्वास ही खत्म हो जाता है। अत: इस बात से यह पता चलता है कि यह ज्ञान देने वाले कितने ऐसे सज्जन है जो इस सन्त गति में रहते हैं?

मेरा कहने का यह भाव नहीं है कि देश में यह सत्संग देने के बड़े-बड़े आश्रम या डेरे न हों या इतने सन्त सतगुरू न हो। जिस देश में जितने सन्त होंगे और मनुष्यों को जितनी आध्यात्मिक शिक्षा मिलेगी, वह देश धरती पर एक स्वर्ग बन जायेगा। क्योंकि एक सन्त तो पूरे देश के लोगों को ज्ञान नहीं दे सकता है। जिस प्रकार सांसारिक शिक्षा के लिए हर कक्षा या विषय को पढ़ाने के लिए अनेक विद्यालयों

व अध्यापकों की जरुरत है इसी प्रकार अध्यात्म ज्ञान व आत्म ज्ञान की शिक्षा के लिए भी अधिक सन्त सतगुरु व आश्रम की भी आवश्यकता है। परन्तु यह तभी सार्थक होगा जब ये पूज्य अध्यात्म का ज्ञान देने वाले महापुरुष मन, वचन व कर्म से पवित्र हों। स्वयं किसी पूर्ण अनुभवी सन्त सतगुरु की संगत में रहकर आत्म ज्ञान के अनुभवी हों और परम आनन्द व शान्ति की अवस्था में रहते हों। उनकी रेडियेशन (विकिरण धारा), दर्शन व सत्संग से संगत को विशेष लाभ व सुख-शान्ति प्राप्त होगी क्योंकि जैसे मैंने पहले कहा है कि यह लोक संकल्प, विचार व इच्छा का है। यदि कोई महापुरुष सत्संग यह इच्छा रखकर करायेगा कि मेरा आश्रम बहुत बड़ा बन जाए और मेरी बहुत संगत बन जाए तो ऐसा ही हो जायेगा। परन्तु इससे सत्संग का कोई विशेष लाभ लोगों को नहीं होगा। और यदि सत्संग कराने वाला महात्मा पूर्ण अनुभवी हो और यह विचार रखकर सत्संग कराए कि उसके सत्संग में जो भी कोई जिस किसी इच्छा को लेकर आए तो उस की वह इच्छा पूर्ण हो तो ऐसा ही होगा और यदि सत्संग कराने वाला महात्मा विचारों से ऊपर परम आनन्द व परम शान्ति में रहने वाला होगा तो उसके दर्शन व सत्संग से संगत को बहुत शान्ति प्राप्त होगी।

सत्संग कराने वाले महात्मा के साथ-साथ सत्संगी के भाव, विचार भी सत्संग में काम करते है।। जो सत्संगी सत्संग में जैसा भाव, विचार लेकर जायेगा, उस को अपने भाव, विचार, श्रद्धा व विश्वास का ही फल मिलेगा। क्योंकि धर्म विश्वास का विषय है। जिसको जो कुछ मिलता है वह उसके आस-विश्वास का ही फल होता है। गुरु ने तो जीव को सच्चा ज्ञान देना है। अगर गुरु खुद ज्ञानी, पूर्ण अनुभवी व विवेकी है तो वह जीव को भटकायेगा नहीं। जीव की प्रकृति, संस्कार व अधिकार के अनुसार साधन की विधि बताकर उसे यह निश्चय करा देगा कि परमात्मा तेरे अन्दर है और वही हर मनुष्य

में काम कर रहा हैं अत: कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है। बस अपने विचार व रहनी को ठीक रखो और निर्भय होकर इस जीवन लीला को प्रेम-प्यार से खेलो। किसी सज्जन को यदि शुभ कर्मों से कोई पूरा विवेकी, अनुभवी गुरु जीवन में मिल जाता है तो समझो उसे सब कुछ ही मिल जाता है क्योंकि गुरु उसका लोक व परलोक दोनों बना देता है। अत: हमेशा सच्चे गुरु की चाह व तलाश में रहना चाहिए। क्योंकि ''जित्थे चाह, उत्थे राह।''
कहा भी है :

''सतगुरु खोजो री जग में, दुर्लभ रत्न यही।''

❑❑❑

जीवन लीला

यह संसार एक नाटकशाला है। यहां विभिन्न सुरतें भिन्न-भिन्न रुप धारण करके अपना-अपना खेल खेलती हैं और खेलते-खेलते जब थक जाती हैं तब वापिस अपने घर चली जाती हैं। परन्तु अज्ञानता के कारण मनुष्य अपने इस खेल को बिगाड़ लेता है और दु:खी होकर इस जीवन को जीता है। जिस तरह से रंगमंच पर कोई नाटक खेला जाता है और हर पात्र अपनी पात्रता को अच्छी तरह से प्रदर्शित करता है तो वह नाटक सफल माना जाता है। इसी तरह हर मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में अपने-अपने कर्त्तव्य या पात्रता की ओर ध्यान दे तो वह अपना खेल सुन्दर तरीके से खेल सकता है। परन्तु अज्ञानता के कारण वह अपने ही विचारों से अपने इस खेल को बिगाड़ लेता है और दु:खी होता रहता है। वास्तव में यह मनुष्य परमात्मा का ही एक अंश है या चेतन का एक बुलबुला है जो इस शरीर में आकर खेल करता है और जब तक उसको अपना ज्ञान नहीं होता, वह संसार के इन बाहरी सुख-दुखों के प्रभावों से बच नहीं सकता। इस मनुष्य शरीर में चार तत्व मुख्य हैं - शरीर, मन, आत्मा व सुरत। यह मनुष्य का स्थूल शरीर बाहरी खाद्य पदार्थों के खान-पान से बनता है जो सूर्य के प्रकाश व जमीन की गर्मी से पैदा होते है। यह शरीर स्वप्न व सुषुप्ति (गहरी नींद) में निष्क्रिय हो जाता है अर्थात् इस अवस्था में यह कोई काम नहीं करता, परन्तु फिर भी इसमें चेतनता बनी रहती है। मन की खुराक संकल्प विकल्प या विचार है। इस मन के बिना शरीर कोई कार्य नहीं कर सकता है। किसी भी कार्य को करने के लिए पहले मन में विचार आता है फिर उसके अनुसार शरीर वह काम करता है। स्वपन अवस्था में इस मन का अनुभव किया जा सकता है जब यह तरह-2 के दृश्य व नजारे देखता है परन्तु जागने पर उनका कोई अस्तित्व नहीं रहता। मगर गहरी नींद में यह मन भी कोई कार्य नहीं करता है। अत: यह मन आत्मा रूपी शक्ति के आधीन है जिससे

यह शक्ति लेता है।

इन मनुष्य शरीर में तीसरा तत्व आत्मा है जो प्रकाशरुप व आनन्दरुप है। इस मन व शरीर की रचना प्रकाश से ही होती है। यदि सूर्य की रोशनी जमीन पर न आए तो कोई वस्तु उत्पन्न ही नहीं हो सकती हे। इसी प्रकाश या ज्योति से ही रचना होती है। इसका अनुभव गहरी नींद से जागने पर मनुष्य करता रहता है। बाहर व अन्दर का सब आनन्द आत्मा का है। यह आत्मा सुरत से अपनी शक्ति लेता है। मनुष्य में मुख्य वस्तु यह सुरत है जो परमात्मा का ही अंश रूप है। यह सुरत ही शरीर, मन और आत्मा का खेल करती हुई परम आनन्द व परम शान्ति के भण्डार से यहां आती है और खेल खेलते-खेलते जब यह उपराम हो जाती है तो वापिस अपने निज मुकाम पर पहुँच जाती है। जैसा कि मेरे गुरु महाराज जी ने कहा है -

जिस्म है यह बुलबुला स्थूल प्रकृति से पैदा हुआ।
मन है यह बुलबुला सूक्ष्म प्रकृति से पैदा हुआ।
आत्मा है एक बुलबुला कारण प्रकृति से पैदा हुआ।
इसलिए इन्सान है एक बुलबुला जो तमव्वुज से है पैदा हुआ।।

प्रत्येक जीव अपनी-अपनी प्रकृति व कर्म के अनुसार खेल करता है और अपना-अपना खेल खेलकर अपनी ही प्रकृति व कर्म के अनुसार वापिस चला जाता है। शरीर के तत्व पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश में परिवर्तित हो जाते हैं। आत्मा के अणु कारण प्रकृति में मिल जाते हैं। अर्थात् ये तीनों की तीनों ही अवस्थायें नाशवान है और यह अविनाशी सुरत रूपी तत्व अपने शब्द रूपी परम तत्व में मिल जाता है जो सर्वाधार है, मालिके कुल है।

जिस्म बनता है और टूटता, संकल्प उठता है और टूटता।
रुह बनती है और खत्म होती है, जो रहे सदा वह है सच्चा खुदा।।

उस परम शक्ति या मौज से हमारा यह (Self) मैं पना बनता

है, यहां आकर खेलता है और उसी की हिलोर से उसी में समा जाता है। जब मनुष्य इस शरीर के रहते-रहते शरीर, मन और आत्मा से ऊपर उठकर यह जान लेता है कि वह कौन है ? कहां से आया है और कहां जायेगा ? तो फिर वह दुनिया के सारे कार्य करता हुआ उसमें फंसता नहीं है और इसे सत्य न समझ कर, खेल समझ कर जिन्दगी जीता है। ऐसा व्यक्ति जीवन्मुक्त अवस्था का जीवन जीता है। मैं 1956 से ऐसा जीवन जी रहा हूँ और हर समय मेरी समता की स्थिति बनी रहती है। मेरे गुरु महाराज जी ने इस विषय में इस प्रकार कहा है -

हस्ती मस्ती में आकर ऐसी बस्ती में रहती है।
जहां न माया है न ब्रह्म है, न सत की हस्ती है।।
मगर जिस्म, दिल व रुह के गिलाफों में आकर के।
अपने सफरे जिन्दगी का अनुभव बयान करती रहती है।।

क्योंकि

मौज है, मौज है, उस राम की या अपना कर्म भोग।
उसके जेर असर यह हस्ती फकीरी का काम करती है।।
इन्सानी जिस्म में हमारा मन है जो संकल्प उठाता रहता है।
इस संकल्प से परे प्रकाश है जो संकल्प बनाता रहता है।।
इस प्रकाश से परे एक तत्व है जो सुरत या रुह कहलाता है।
इस रुह से परे एक जात है जो परम तत्व कहलाता है।।
वह आप ही आप खुद ही अपने खेल से जिस्म तक आता है।
और आप ही लौट कर फिर अपने में समाता रहता है।।
उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के खेल को वह आप रचता है।
आप ही एक बनकर फिर अनेक होता रहता है।।
हर मंजिल हर हालत या लोक में वह आप लुत्फ उठाता है।
जब थक गया एक हालत में तब दूसरी में आता है।

और यही प्रत्येक प्राणी का जीवन है जिसे महर्षि ने एक शब्द में इस प्रकार कहा है -

यह जग नाटकशाला साधो, यह जग नाटकशाला।
राजा रंक फकीर औलिया, दृश्य विचित्र निराला।।

कोई तो ओढ़े शाल दुशाला, कोई सिर कम्बल काला।
सुरत ने अद्‌भुत वेश बनाए, नाचे नाच रसाला।।

गावे भाव दिखावे छिन्न-2, खेले खेल निराला।
ब्रह्म वेद से रचा जगत को, विष्णु गदा ले पाला।।

शिव संहार का राज सजावे, साथ भूत बेताला।
नाचे दुर्गा कमला शारद, काली छवि विकराला।।

सावित्री का राग गायत्री, सैन बैन का ताला।
शंख नाद की धूम मची है, डमरु शोर कराला।।

रारंग सारंग बजे सारंगी, बीन सितार सुहाला।
श्रुति धुन है उद्‌गीत की बानी, ओ३म्-ओ३म् का ताला।।

श्रोतागण सब सुनने आए, मन में भय निहाला।
साधु द्रष्टा साक्षी रुप है, सुख-दुख मन से टाला।।

जिसने अपना रुप विसारा, उर उपजे दुःखशाला।
साक्षी देखे विमल तमाशा, चित रहे सुखी सुहाला।।

भूल भरम में जो कोई आया, सहे कर्म का भाला।
रैन का सपना जग की लीला, स्वपन धन और माला।।

आँख खुली तब कुछ नहीं दरसा, गुप्त जो देखा भाला।
राधास्वामी सन्त रुप धर आए, दीन बन्धु सुदयाला।
प्रेम प्याला हमें पिलाया, सहज किया मतवाला।।

इस शब्द में स्पष्ट है कि यहां सुरतें भिन्न-भिन्न वेशभूषा और शक्ल-सूरत बनाकर इस संसार रुपी बड़ी नाटकशाला में खेल कर रही हैं। साथ ही यहां योग की विधियां भी सैन-बैन में बताई है। जब मनुष्य को इस योग से अपने रुप का ज्ञान हो जायेगा यानी इसका ज्ञान चक्षु खुल जायेगा तो उसे इस खेल के बारे में सब समझ में आ जायेगा।

हमारे पिछले महर्षियों ने योग से अनेक लोक लोकान्तरों का अनुभव किया है। जैसे -

भूः भवः स्वः महः जनः तपः सतः

सहस्रदलकंवल त्रिकुटी सुन्न महासुन्न भंवरगुफा सतलोक

अन्नमय कोष प्राणमय कोष मनोमय कोष विज्ञानमय कोष आनन्दमय कोष

तलब इश्क मार्फत इरतगना फना बका निज रूप

यह जो विभिन्न लोकों की बात है, केवल त्रिकुटी में साधना करने वाला सज्जन ही समझ सकता है। अब जो आखिरी अनुभव इन्होंने सतलोक का कहा है, उसमें शब्द और प्रकाश है। मैंने इससे आगे जिसे सार शब्द कहा जाता है तथा राधास्वामी वाणी में जिसको अलख कहा है जो देखने में नहीं आता केवल अनुभव किया जा सकता है, उसका अनुभव अपने गुरु महाराज पं. फकीरचन्द जी के पास 15 या 20 मिनट तक बैठने पर प्राप्त किया है। इसे मैं सहज में करता रहता हूँ, यानी यह अपने आप हो रहा है। जहां यह शब्द और इसको सुनने व अनुभव करने वाली सुरत गुम हो जाती है तो इस स्थिति या

अवस्था का नाम अनाम है। जीवन में दो बार कुछ समय के लिए इसका अनुभव हुआ है परन्तु फिर उत्थान हो गया और सुरत शब्द का अनुभव करके चेतनता में आ गई। अब कब यह सदा के लिए उस परमात्मा में जिसके बहुत से नाम हैं, लीन हो जायेगी - कुछ कहा नहीं जा सकता। सब उसकी मौज का खेल है। यहां आकर सब साधक, खोजी व सन्त चुप हो गए और मैं भी एक दिन चुप हो जाऊंगा।

लाई हयात ले चली कजा चले।
न अपनी खुशी आए न अपनी खुशी चले।।

सुरत हुई अति कर मगनानी।
पुरुष अनामी जाय समानी।।

बुलबुला चेतन टूटा तो आप ही आप रहा।
पहले भी आप था फिर भी वह आप ही रहा।।

❑❑❑

प्रवृत्ति व निवृत्ति मार्ग

इस संसार में जीवन बिताने के दो मार्ग हैं : प्रवृत्ति व निवृत्ति। प्रवृत्ति का अर्थ है किसी कार्य में प्रवृत्त होना। यह संसार कर्म क्षेत्र है। यहां हर व्यक्ति अपनी-अपनी प्रकृति व संस्कार के अनुसार कर्म करने को मजबूर है। यह कर्म दो प्रकार का है - सकाम व निष्काम। सकाम कर्म किसी कामना, इच्छा या स्वार्थ से किया जाता है और इस कर्म का अच्छा या बुरा फल उसे भोगना पड़ता है परन्तु निष्काम कर्म बिना किसी इच्छा या निस्वार्थ भाव से किया जाता है जिसका फल उसे भोगना नहीं पड़ता।

इस संसार में सुखी व सुन्दर जीवन बिताने के लिए मनुष्य को सुन्दर-सुन्दर विचार रखने चाहिए क्योंकि जैसा वह सोचता है वैसा ही उसका जीवन बन जाता है। यह संसार संकल्पमय है। मनुष्य को संकल्प शक्ति का ज्ञान नहीं है। वह जो भी सच्चे मन से चाहता है या इच्छा करता है, वहीं उसको मिलता है, परन्तु साथ ही उसको यह भी समझ हो कि अज्ञानता, नाराजगी या क्रोध की अवस्था में जो भी उसके घटिया, बुरे विचार या नकारात्मक (Negative) विचार होंगे, उनका भी फल उसे भोगना होगा। इसी को कर्म का नाम दे दिया गया। परन्तु इस सैन-बैन को आम मनुष्य नहीं समझ सकता है। ''कर्म जो-2 करेगा तू वही फिर भोगना भरना।''

जैसे किसी ने सोचा या विचार किया कि एक घर बनाए या मन्दिर, आश्रम बनाए तो उसने मन से या विचार से कर्म कर दिया। जब उसने उसे बनाने के लिए जरूरत का सामान मंगवाने की बातचीत की तो तब आप समझें कि उसने वचन से वह काम कर दिया है और जब वह मकान इत्यादि बना कर खड़ा कर दिया तो वह कर्म हाथ से या स्थूल रुप से बन गया है। तो बात स्पष्ट है कि कर्म का बीज रूप विचार है हर मनुष्य हर समय विचार से कर्म करता रहता है। जैसे उसके विचार होंगे वैसा ही उसे फल मिलेगा। इसके लिए

यह वेद मन्त्र है कि 'शिव संकल्पमस्तु' ऐ मनुष्य तू हमेशा सुन्दर-सुन्दर विचार रख, तेरी दुनिया सुन्दर बन जायेगी। यह बात किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष के सत्संग में जाकर समझी जा सकती है।

''As you sow, so shall you reap''
अर्थात् ''जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे।''

तो प्रवृति मार्ग कर्म योग है, सुन्दर-सुन्दर विचारों का। यानी हमेशा Positive Thinking हो। अच्छा आचरण, सुन्दर रहनी व हक हलाल की कमाई हो व अपनी कमाई के अनुसार खर्चा हो। घर-परिवार में प्रेम-प्यार व हंसी-खुशी का जीवन हो। किसी अनुभवी महापुरुष जो खुद गृहस्थी हो और जिसमें आपका विश्वास हो, उसको गुरु मानकर सत्संग का लाभ उठाते रहो ताकि विचार सुन्दर व कल्याणकारी बने रहें। यह बात तो इस लोक में जीवन सुन्दर बनाने की रही यानी प्रवृत्ति मार्ग की है। मैंने गुरु कृपा से सेना के अधिकारी पद पर रहते हुए, युद्ध में भाग लेते हुए, युद्ध कला की शिक्षा देते हुए इस ज्ञान योग का अनुभव करते हुए, अब 83 वर्ष की आयु तक जीवन एक फूल की तरह हल्का, सुख, आनन्द, प्रेम, बेगमी व बेफिकरी में जीने का अनुभव किया है और लगभग 1960 से गुरु आज्ञा से इस प्रवृत्ति मार्ग का ही सत्संग देता आ रहा हूँ कि मनुष्य इस दुनिया में कैसे सुख शान्ति व खुशी का जीवन जीये क्योंकि मेरे सत्संग में कोई निवृत्ति मार्ग का अधिकारी ही नहीं आया। सब लोग काल कर्म के मारे दुनिया में दु:खी हैं या जीवन में जिन्हें किसी चीज का अभाव है, वे ही सज्जन सत्संग में आते रहे हैं और मैं उनको सहज ही अपने अनुभव से सुखी होने की विधि बताता रहा हूँ, परन्तु मैं शुरू से ही निवृति मार्ग का योगी रहा हूँ, मेरे लिए निवृत्ति और प्रवृत्ति बहुत सहज बात रही है।

निवृत्ति मार्ग :- इस निवृत्ति मार्ग की बात तब आती है जब आपका संसार सुन्दर बन जाए और सत्संग सुनते-सुनते कुछ होश आ जाए कि यह जीवन तो हमेशा नहीं रहेगा। इसके आगे क्या है ? यानी

जो कुछ आपके पास है यह तो सब कुछ यहां ही रह जायेगा। मैं जाते हुए अपने साथ क्या ले जा सकता हूँ? कहने का भाव यह है कि यह मुक्ति, निर्वाण या मोक्ष पद का मार्ग उन सज्जनों के लिए है जो इस संसार में किसी भी बात में रुचि नहीं रखते और संसार का खेल खेलते-खेलते थक गए हैं तथा वापिस अपने निज घर जहां से यह मनुष्य की सुरत खेल खेलने आई है, वहां जाना चाहते हैं। ऐसा मनुष्य हजारों करोड़ों में कोई एक होता है।

''कोटिन में कोई एक जे नारायण चित।''

फिर उसकी इच्छा व चाह के अनुसार कोई पूर्ण अनुभवी गुरू उसे मिल जाता है जो उसकी प्रकृति, संस्कार व अधिकार देखकर, उसे सत्संग देकर सहज ही योग की आसान विधि बता देता है और जब योग से उसका मन पवित्र हो जाता है तब उसे अपने अन्तर का अनुभव हो जाता है और अन्तर का अनुभव हो जाने पर वह उसे वह ज्ञान देता है जिसको समझ कर मनुष्य मुक्त होकर घर-परिवार में सब खेल खेलते हुए, जीवन लीला का आनन्द लेते हुए, परम सुख व शान्ति का अनुभव करते हुए इसी जीवन में स्वर्ग जैसे सुख का अनुभव करते हुए रसदार जीवन जीता है। तब उसे न घर छोड़कर कहीं जाने की आवश्यकता है, न भगवां वस्त्र पहनने व राख मलने की। ऐसा व्यक्ति अपनी रोजी-रोटी कमाते हुए, अपने मन के संकल्प-विकल्प व तरंगों से ऊपर रहते हुए बहुत सहज में सुखमय जीवन बिताता है। मेरे साथ यह घटना घटी है। मुझे 15 या 20 मिनट में ही इस रास्ते का अनुभव हो गया था। आप भी करके देख लेना। बात केवल लगन, तड़फ व रुचि की है।

''लगन जिसको लगी पूर्ण, उसे फिर कौन अटकावे।
वह ब्रह्मानन्द जाता है, वक्त फिर हाथ नहीं आवे।।

पूरा सतगुरू खोजिए, पूरी होए जुगत।
हांदिया, खावंदिया, खेलदिया विचे होए मुक्त।।

घट में है सूझत नहीं, लानत ऐसी जिन्द।
नानक इस संसार को हुआ मोतिया बिन्द।।

भक्ति और ज्ञान योग से परिपूर्ण महर्षि शिवव्रतलाल जी का शब्द

पिला दे भक्ति का ऐसा प्याला। ममत्व मैं अपने मन का खो दूँ।।
न बुद्धि रहे न सुधि रहे कुछ। अहंपना सारा मन का खो दूं।।

जपूं तपूं और भजूं न सुमिरु। न योग युक्ति के पंथ में दौडू।।
न नाम की माला हाथ में हो। हिये की माला का मनका खो दूँ।।

वह राग क्या जिसमें राग आये। वह त्याग क्या त्याग में फंसाए।।
न बन्द और मुक्ति का हो खटका। विवेक घर और वन का खो दूं।।

न दुःख की दुविधा न सुख की चिन्ता। न चित की दुचिता का भय हो।।
न ज्ञान और ध्यान की हो इच्छा। विचार साधन यत्न का खो दूं।।

न द्वन्द निर्द्वन्द्व का हो झगड़ा। न द्वैत अद्वैत का हो बखेड़ा।।
झुका के सिर राधास्वामी पद में। विचार तक दासापन का खो दूं।।

प्यारे पाठको ! भक्ति का आनन्द कुछ और है। परन्तु मैं गुरु कृपा से पहले ही दिन सीधा सार शब्द के अनुभव में गुरू जी की Radiation (विकिरण धारा) के प्रभाव से ठहर गया था और पूरा जीवन ज्ञान योग में, शब्द की भक्ति में गुजारा जिसमें एक समता व परम शान्ति का अनुभव बना रहता है। सुरत सहज ही केवल सार शब्द को सुनती हुई उसका अनुभव करती रहती है। यदि अन्त समय यह स्थिति रही तो मेरी सुरत जो परमात्मा का एक छोटा अंश है, उसी में जाकर लीन हो जायेगी। यह बात परमात्मा की मौज पर है, कोई दावा नहीं है। जैसे कहा है -

''तपा रे तपा, काहे को खपा।
अन्त समय पता नहीं क्या हो मता।।''

''अन्त मता सो गता।''

इस मनुष्य शरीर के रहते हुए दो बार मेरी सुरत वहां का अनुभव करके वापिस आई है, जिसमें पुन: शब्द प्रकट हुआ चेतनता आई और समझ, विवेक व बुद्धि आने पर मैं होश में आ गया। इसलिए मैं समझता हूँ कि अन्त समय यह अनुभव रहा तो मेरी सुरत वापिस इस लोक में नहीं आयेगी, सदा के लिए निज घर में वासा पा जायेगी। मैंने कई बार अपनी पुस्तकों में लिखा है कि मेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं। यदि सुरत अन्त समय अपने तत्व में लीन हो गई तो कुछ कहने की बात ही नहीं है। और यदि गुरू महाराज ने वापिस यहां भेज दिया तो भी मुझे बहुत खुशी होगी क्योंकि मैं यह गुरू ज्ञान प्यारे भारत के मनुष्यों को भी नहीं दे पाया हूँ कि विदेशों से भी मुझे प्यार के बुलावे आ रहे हैं। अत: मैं घर-घर और गांव-गांव व सब देशों में और इस भूमि पर पूरी मनुष्य जाति को इस मानवता का ज्ञान दूंगा ताकि पूरी मनुष्य जाति यहां इस लोक में स्वर्ग जैसा सुख, शान्ति, आनन्द व प्रेम का जीवन जीये और हंसते, खेलते अपना रूप जान लें तथा परमात्मा का भी अनुभव यहां इस शरीर में रहते हुए सहज योग साधन करके कर लें। क्योंकि मैंने यहां बहुत सुख का जीवन जीते हुए इस तत्व का अनुभव किया है। जैसे कहा भी है -

''जाको दर्शन इत है, वा को दर्शन उत।
जाको दर्शन इत नहीं, वा को इत न उत।।''

घर सुख बसिया तो बाहर सुख पाया।
कहे नानक गुरू मन्त्र दिलाया।।

कुछ देशी कहावतें भी इसी ओर संकेत करती हैं। जैसे -

''जेड़े घर भैड़े ओ लाहौर भी भेड़े।''
''जो सुख छज्जू दे चौबारे, ओ बलख न बुखारे।।''

अत: जिसको गुरू कृपा से अपने रूप का अनुभव हो जाता है, उसके लिए यह मनुष्य जीवन सुखात्मक, आनन्दमय व प्रेममय बन जाता है और जो अभी तक अपने रूप का अनुभव नहीं कर पाया है, वह अपने ही शुभ-अशुभ कर्मों का फल भोगने को मजबूर है। चाहे कोई राजा बादशाह का भेष बनाए हुए राजगद्दी पर बैठा हो या कोई महात्मा का भेष बनाए गुरू गद्दी पर बैठा हो। चाहे कोई गरीब हो या अमीर हो। जिसको अपने निज रूप का अनुभव नहीं हुआ है, वे सब दु:खी हैं। कोई ज्यादा कोई कम। यह मेरा अनुभव है। जैसे कहा है -

''नानक दुखिया सब संसार।
सुखिया सो जो नाम आधार।।''

नाम के अनुभव से मनुष्य को अपने निज रूप का अनुभव हो जाता है कि वह क्या है ? कहां से आया है और कहां जायेगा? उसे ज्ञान हो जाता है कि उसकी सुरत यहां खेल खेलने आई हुई है अत: वह साक्षी भाव से सब खेल खेलते हुए इस जीवन को रसदार बना कर जीता है।

❑❑❑

साधु सन्त व सतगुरु की महिमा

''साधु मिले तो एक फल, सन्त मिले फल चार।
सतगुरू मिले अनेक फल, कहे कबीर विचार।।''

'साधु' साधना करने वाले को कहते हैं। जो साधन नहीं करता वह साधु नहीं है। जो घर छोड़ कर भाग जाते हैं ओर गेरुवें कपड़े पहनकर महात्मा का भेष बनाकर घर-घर मांगते फिरते हैं, उन्हें साधु नहीं कहा जा सकता है क्योंकि साधु किसी के आगे हाथ फैला कर भीख नहीं मांगता। वह तो दातार व शूरवीर होते है। जैसे कहा है-

''बिन साधन के साधवा। कोई साध न होय।
कोई साध न होय, जो साधन चित नहीं लावे।
जानो ताहि असाध सदा, सो विपत कमावे।।''

साधु को घर छोड़ कर भागने की या भेष बदलने की जरूरत नहीं है क्योंकि उसका काम तो साधना करना है चाहे वह घर में रहे या बाहर। साधना किसी भी समय व किसी भी जगह पर की जा सकता है। साधना करने वाला योगी अपने मन को एकाग्र करके अपनी मनोवृत्ति को अन्तरमुखी बना लेता है और वह हमेशा दूसरों का भला चाहता है। ऐसे साधु को देखने मात्र से ही लाभ होता है। परन्तु ऐसे साधु देखने में बहुत कम आते हैं। साधु के लिए ऐसा कहा गया है:

''साधू ऐसा चाहिए, जैसे सूप स्वभाय।
सार-सार को गह रहे, थोथा देइ उड़ाय।।''

ढ़ोंगी साधु के लिए राधास्वामी वाणी में ऐसा कहा है -

तुम साधु कहावत कैसे, मैं पूछूं तुमसे ऐसे।

मान न छोड़ो क्रोध न छोड़ो, कुटिल वचन नहीं सहते।।
कोमल चित्त न कोमल बोली, दया भाव नहिं लेसे।।

आप पुजावत काहु न पूजत, मांग-मांग धन जोड़त पैसे।
काम न छूटा लोभ न छूटा, मोह ईर्ष्या डारत पीसे।।

भजन भक्ति अभ्यास न करते, कभी न छूटो तुम इस जम से।
घर छोड़ा उद्यम पुनि छोड़ा, मेहनत कोई न करते।।

देश विदेश फिरो झख मारत, कफन पहन क्यों लाज लगाते।
दंभ कपट छल हिरदे बसता, गिरही को आचार दिखाते।।

चौके से हम रोटी खावें, रोटी पूरी भेद समझते।
बुद्धि विचार न गुरू मिला पूरा, गिरही (गृहस्थी) की भय लज्जा करते।।

साध चरण अड़सठ से उत्तम, भूमि पवित्र जहां पग धरते।
तुम तो कर्म भ्रम में अटके, साध नाम अपना क्यों धरते।।

काल ठगौरी डाली तुम पै, भेष बनाय जगत को ठगते।
अब कुछ समझ करो सत्संगत, डरो जरा नर्कन के दुःख से।।

विरह भाव वैराग सम्हालो, भक्ति करो और भागो जग से।
मन को मारो इन्द्री बांधो, सुरत लगाओ शब्द अधर से।।

तब चित्त कोमल बुद्धि निर्मल, आप होय छूटो मन ठग से।
अब क्या कहूं कहा मैं बहुतक, अधिकारी माने एक तुक (संकेत) से।।

जो निर्लज्ज कपटी जग मारे, वह क्या जाने भूत पशु से।
राधास्वामी कहत सुनाई, मानेंगे कोई हंस वचन से।।

अतः जो साधु सच्चा, स्वार्थ रहित व साधक है, वहीं दूसरों का भला कर सकता है। ऐसे साधु महात्मा के पास जो कोई श्रद्धा भाव या विश्वास रखकर जिस किसी इच्छा को लेकर जाता है तो वह महात्मा उसे आशावादी विचार व आशीर्वाद देता है और फिर उसी के अपने विश्वास व श्रद्धा से उसका काम हो जाता है और भक्त यह समझता है कि महात्मा जी की कृपा से मेरा यह काम पूरा हुआ है। जबकि सच्चाई यह है कि यह उस भक्त के विश्वास का ही फल है। इसका प्रमाण यह है कि मैं किसी को नाम दान नहीं देता हूँ और न ही किसी को शिष्य बनाता हूँ फिर भी मेरा सत्संग सुनकर मेरे पास जो भक्त जिस भाव या इच्छा को लेकर आते हैं तो मैं उन्हें हमेशा आशावादी विचार देता हूँ और उनके काम पूरे हो जाते हैं जबकि मुझे इस बात का पता ही नहीं होता और बहुत से सज्जनों को तो मैं जानता भी नहीं हूँ। इस बात से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह मनुष्य के ही श्रद्धा-भाव या विश्वास का फल है या उसी के शुभ कर्म का फल है और यदि उसका काम नहीं बनता है तो फिर तो दो ही बात हो सकती हैं। या तो उसके विश्वास में कमी है या फिर मैं सच्चा नहीं हूँ। तो यह है साधु मिले का एक फल।

सन्त का अर्थ सम स्थिति या गति है। जो महात्मा हर समय हर हाल में समस्थिति में रहता है, जीवन को साक्षी भाव से देखता है और किसी भी भाव, विचार व काम, क्रोध, मोह, लोभ अहंकार के वेग में नहीं बहता है अर्थात् इन भावों से ऊपर रहता है, उसका नाम सन्त है। ऐसा सन्त सहज योग से अपने मन पर नियन्त्रण कर लेता है और वह मन के विचारों में न फंस कर हर समय खुशी, उमंग व उत्साह का जीवन जीता है। जैसे कबीर साहब के इस शब्द में लिखा है –

तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहत हूँ, सबका किया विवेका हो।।

घाटे बाढ़े सब कोई देखा, क्या गिरही वैरागी हो।
शुक-आचार्य दुःख के कारण, गर्भ में माया त्यागी हो।

जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तापस को दुःख दूना हो।
आशा तृष्णा सब घट व्यापी, कोई महल नहीं सूना हो।।

साच कहे तो कोई न माने, झूठा कहा न जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो।।

अवधू दुखिया भूपत दुखिया, दुखी रंक विपरीति हो।
कहे कबीर सकल जग दुखिया, सन्त सुखी मन जीती हो।।

यहां कबीर साहब अन्त में लिखते हैं कि इस संसार में केवल सन्त सुखी हैं क्योंकि उसको ज्ञान हो जाता है कि यह सुख-दुख जीवों के अपने ही शुभ-अशुभ कर्मों के भोग हैं। सन्त मनुष्य जीवन के सब क्षेत्रों का अनुभवी होता है और पूर्ण ज्ञान रखता है कि मनुष्य कैसे इस लोक में सुख-शान्ति से जी सकता है ? ऐसा सन्त महापुरुष यदि किसी को जीवन में मिल जाता है तो उसके जीवन में इन चार वस्तुओं का कोई अभाव नहीं रहता है – अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।

सन्त का विश्वासी कभी निर्धन नहीं रह सकता। सन्त उसे धनवान् बनने की सुन्दर विधि बता देता है और साथ ही उसे कर्मयोग का पाठ भी ठीक से समझा देता है। जिससे उसे खाने को रोटी, पहनने को कपड़ा और रहने के लिए मकान की व्यवस्था हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति किसी सन्त की संगत करता है और उस पर विश्वास रखता है और फिर उसे खाने, पीने, रहने व जीवन की आवश्यक वस्तुओं का अभाव रहता है तो समझ लो कि वह सन्त नहीं है अपितु उसने सन्त का स्वांग बना रखा है।

'धर्म' का अर्थ है इस जीवन की हर स्थिति में प्रसन्न या खुश रहना। सन्त अपने विश्वासी को ऐसी योग विधि बताता है जिस पर अमल करने से वह हर समय खुश मिजाज बना रह सकता है और ऐसे सन्त की संगत पाकर भी अगर मनुष्य जीवन में दुखी रहता है तो समझो उसे सन्त की संगत ही नहीं मिली है।

'काम' का अर्थ है मन की सब कामना व इच्छाओं की पूर्ति का होना। काम का अर्थ कामांग ही नहीं है अपितु मन की सब इच्छाएं भी काम कहलाती हैं। जैसे कहा है –

''काम काम सभी कहें, काम न चिन्हें कोए।
जेती मन की कामना, काम कहावे सोए।।''

सन्त मनुष्य को उसकी चाह व इच्छा के पूरा होने का ढ़ंग बताते है जिससे उसकी सब चाह या कामनाएं मिट जाए और उसकी तृप्ति हो जाए। वह जबरदस्ती त्याग की शिक्षा नहीं देते। अपितु उन इच्छाओं को भुगवा कर ऐसी अवस्था में ले जाने की युक्ति बताते हैं जहां किसी प्रकार की कमी का प्रश्न ही नहीं रहता।

मोक्ष, निर्वाण या मुक्ति इन तीनों का अर्थ एक ही है। जीवन में सब खेल खेलते हुए किसी काम में लिप्त न होना, विचारों में नही बहना व साक्षी भाव से सब लीला देखते रहना ही निर्वाण या मोक्ष है। मनुष्य जीवन में ये जितने भाव, विचार या सुख-दु:ख है, इनको सत्य मानकर इनमें खेलना और खेल के सुख-दुख उठाना ही बन्धन है और इनको सत्य न जान कर इस खेल में रहते हुए खेल के प्रभावों में न फंसना ही मुक्ति या मोक्ष है। यह ज्ञान जब भी किसी को मिलेगा इस खेल में खेलते हुए ही मिलेगा अर्थात् जीवित रहते ही मिलेगा। मरने के बाद क्या होगा ? आज तक आकर किसी ने नहीं बताया है। जैसे कहा है –

उतते कोई न आईया, जासे पूछू धाय।
इतते सब कोई जात है, भार लदाय-लदाय।।

तन छूटे जीव मिलन कहत है, सो सब झूठी आसा।
अब हुं मिला है तबहुं मिलेगा, नहीं तो जमपुर आसा।।

जाको दर्शन इत है, ताको दर्शन उत।
जाको दर्शन इत नहीं, ताको इत न उत।।

इसी बात को कबीर साहब ने ऐसे कहा है –

साधो भाई जीवत ही करो आसा।
जीवत समझै जीवत बूझै, जीवत मुक्ति निवासा।
जीवत कर्म की फांसी न काटी, मुए मुक्ति की आसा।।

प्यारे सज्जनों ! मैं गुरू कृपा से यानी पण्डित फकीरचन्द जी महाराज की संगत से लगभग 1962 से एक जीवन्मुक्त अवस्था का जीवन में सेना के जिम्मेवार अधिकारी पद पर काम करते हुए और घर परिवार में जीवन जीते हुए, साक्षी भाव से सब खेल करते हुए अनुभव कर रहा हूँ। मुझे किसी प्रकार का कोई बन्धन या लगाव नहीं है। हर प्रकार से मुक्त जीवन जी रहा हूँ।

''सतगुरू मिले अनेक फल, कहे कबीर विचार।''

जो 'सत्' में रहता है, वह सतगुरू है। 'सत' कहते हैं सत्ता या हैपने को। यह सत् कैसे प्रकट होता है और यहां कैसे अपना खेल खेलता है? इस रहस्य को जानने वाला ही सतगुरू कहलाता है। अर्थात् गुरू नाम है ज्ञान का और सतगुरू नाम है सच्चे ज्ञान का। ऐसा सतगुरू शरीर, मन, आत्मा और सुरत के इस खेल को जानकर, साक्षी भाव से सब देखते हुए सब प्रकार के भाव व विचारों से मुक्त रहते हुए हर समय खुशी व प्रसन्नता का जीवन जीता है। उसकी सुरत सहज ही उस धार से जुड़ी रहती है। आजकल जो जगह-जगह गुरू, आचार्य, सन्त या सतगुरू बने हुए महापुरूष जो लोगों को नाम देकर सत्संग करा रहे हैं, वे स्वयं अपनी रहनी देखें कि क्या वे इस अवस्था के

अनुभवी हैं ? या फिर केवल अपनी मान-बड़ाई या किसी और स्वार्थ के लिए गुरूआई कर रहे हैं। यदि वे अनुभवहीन हैं तो वे लोगों की आखों में धूल झोंक रहे हैं और इसका अन्त बुरा है। क्योंकि कर्म गति से कौन बच सकता है ?

''कर्म जो-जो करेगा तू, वही फिर भोगना भरना।''

कर्म गति पर नीचे कबीर साहब का एक शब्द है जिसमें राम, कृष्ण के अवतार भी अपने कर्मों के अशुभ फल से नहीं बच सकें। फिर हम तो हैं ही क्या जो कर्म के फल से बच सकते हैं ?

कर्म गति टारी नाहिं टरे।।
मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी, सोध के लगन धरी।
सीता हरण मरण दशरथ को, वन में विपत्ति परी।।

कहां वह फन्द कहां व परिधि, कहां व मृग चरी।
सीता को हर ले गया रावण, सोने की लंक जरी।।

नीच हाथ हरिश्चन्द बिकाने, बाली पाताल धरी।
कोटि गऊ नित दान करत नृप, गिरगिट योनी धरी।।

पाण्डव जिनके आप सारथी, तिन पर विपत्त परी।
दुर्योधन को गर्व घटायो, यदुकुल नाश करी।।

राहु केतु और भानु चन्द्रमा, विधि संजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, होनी होके रही।।

प्यारे पूज्य महात्मा सज्जनो। यदि पहले हम खुद मन, वचन व कर्म से पवित्र होकर फिर मनुष्यता को ज्ञान दें तो हमारा भी कल्याण होगा और मनुष्य जाति भी इस भूमि पर सुख शान्ति व परम आनन्द

का जीवन जी सकेगी। जैसे सुखमनी साहब में लिखा है -

सतपुरूष जिन विवेक किया, सतगुरू तिसका नाम।
ताके संग शिष ऊभरे, नानक हरि गुण ज्ञान।।

कबीर साहब ने सतगुरू के विषय में कहा है -

सतगुरू चीन्हो रे भाई।
सतनाम बिन सब नर बूढ़े, नर्क पड़ी चतुराई।

वेद पुराण भागवत गीता, इनको सबै दृढ़ावै।
जाको जन्म सुफल रे प्राणी, सो पूरा गुरू पावै।।

बहुत गुरू संसार कहावे, मन्त्र देत है काना।
उपजै विनसै या भवसागर, मरम न काहू जाना।।

सतगुरू एक जगत में गुरू है, सो जग से कढ़ि हारा।
कहें कबीर जगत के गुरूआ, मर मर ले अवतारा।।

प्यारे पाठकों ! मुझे जीवन में ऐसे सतगुरू पण्डित फकीरचन्द जी महाराज, होशियारपुर (पंजाब) के रहने वाले मिले। 1956 में मैं उनके दर्शन करने गया था। 15 या 20 मिनट की संगत से सहज ही मुझे उस नाम का अनुभव हो गया जिसकी धर्म-कर्म में बहुत चर्चा है। और फिर गुरू जी ने मुझे कहा कि यह जो तुम अपने मस्तिष्क में अनुभव कर रहे हो, इसका नाम भजन है और इसी को ही निज नाम कहते हैं। जिस जगह, जहां और जिस हालत में रहते हो, सहज ही इसका अनुभव करते रहना। एक दिन जहां से आपकी यह सुरत आई है, वहीं पहुंच जाओगे और तब से आज तक मैं इस नाम का अनुभव सहज में जीवन का हर काम करते हुए करता आ रहा हूँ। मेरी आयु अब 83 वर्ष की चल रही है। मेरा अनुभव महापुरूषों के

इस ज्ञान से बिल्कुल अलग है, जो यह कहते हैं कि इस दुनिया में दु:ख ही दु:ख है, यहाँ कोई सुखी नहीं है क्योंकि मैंने इस जीवन में स्वर्ग जैसे सुख का अनुभव करते हुए आनन्द, खुशी व बेफिकरी का जीवन जिया है और अब भी जी रहा हूँ। तो यह 'सतगुरू मिले अनेक फल' वाली बात है। अत: मुझे जो सतगुरू मिले उनका गुणगान करने के लिए मेरे पास ऐसे शब्द ही नहीं है जिनको लिखकर मैं आपको सतगुरू की महिमा बता सकूं। मैं कबीर साहब का एक शब्द लिखता हूँ, जिसमें उन्होंने सतगुरू की महिमा बताई है –

सतगुरू निर्वाणी निर्वाणी

अष्ट सिद्धि नौ निधि करे मजूरी, और विद्याता रानी।
चान्द सूरज दो जले चिरागी, सुरत गगन गहरानी।।
सतगुरू.....
चार वेद और नौ व्याकरणा, अष्टादश पुराणी।
इनसे साहिब अगम अगोचर, गुरमुख विरला जानी।।
सतगुरू.....
अर्थ धर्म और काम मोक्ष जाके, फिरै बैल ज्यों घाणी।
साची भगती बिन चार पदार्थ, काग भीष्ट सम जानी।।
सतगुरू.....
शेष मुखा से शेष रटत है, वह भी भेद न जानी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह सतगुरू की वाणी।।

अर्थात् सतगुरू एक मुक्त अवस्था का जीवन जीता है और ये आठ सिद्धि व नौ निधि उसके आगे-पीछे घूमती रहती है और यह भाग्य निर्माता विधाता सतगुरू की सेवा में हाथ जोड़े खड़ा रहता है। आजकल जो महात्मा की वेशभूषा पहने सन्त सतगुरू कहलाने वाले, लोगों को ज्ञान देने वाले जो अपने आश्रमों के लिए धनवानों से धन की सेवा मांगते हैं, वह सतगुरू नहीं है अपितु ढ़ोंगी है। यह तो ''सांग

जति का पहन कर, घर-घर मांगी भीख।'' वाली बात है। सतगुरू तो वह होता है जिसकी सुरत चान्द व सूरज से आगे प्रकाश व शब्द में खेलती रहती है।

कुछ पढ़े लिखे विद्वान् महापुरूष अपने सत्संगों में वेद, व्याकरण व पुराणों की चर्चा करते हैं, जबकि वह मालिक जो सर्वाधार, एक रस व तटस्थ हैं, वह इन शास्त्रों की बातों से आगे है। करोड़ों में कोई विरला ही गुरुमुख होता है जो उसका अनुभव करता है।

आगे कहा है कि सच्ची भक्ति वह है जो सुरत अपने अन्दर सार शब्द का अनुभव करती है। यदि यह अवस्था किसी को प्राप्त नहीं हुई है तो अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष का अनुभव भी काग की भीष्टा के समान ही समझों क्योंकि ये वस्तु आज हैं, कल नहीं होंगी। केवल सुरत-शब्द का साधक ही अपने निज घर जा सकता है।

आखिर में सतगुरू की महिमा के विषय में कबीर साहब कहते हैं कि शेषनाग भी अपने मुख से उस परमात्मा का नाम रटता रहता है, परन्तु उसका भेद सिवाय सतगुरू के कोई नहीं जान सकता है। तो यह है सतगुरू की महिमा।

सतगुरू जब इस धरती पर आता है तो कभी वह गायों का रखवाला बनकर, कभी भेड़, बकरी व ऊँटों को चराने वाला बनकर, कभी कपड़े बुनने वाला जुलाहा बनकर तो कभी जूते गाठने वाला मोची बनकर आता है यानी वह बहुत ही साधारण मनुष्य बनकर यहां आता है और साधारण भाषा में अपना ज्ञान दे जाता है कि ऐ मानव! परमात्मा तेरे अन्दर है। तू क्यों व्यर्थ में तीर्थ, मन्दिर, गुरूद्वारा, मस्जिद, गिरजाघर व पहाड़ जंगलों में भटकता फिर रहा है ? वह जीव को चिताता है और कहता है कि तू मेरी शरण में आ। तू जो भी चाहता है, उसको पाने की मैं आसान विधि तुझे बताता हूँ। परन्तु मनुष्य उस समय चूक जाता है और ऐसे सतगुरू को पहचान नहीं पाता। और ऐसे नकली महापुरूषों के आगे नाक रगड़ता फिरता है जो उन्हें सच्ची बात नहीं बताते और सच्ची बात बताने वाले सतगुरू से वह दूर ही रहता है।

जब सतगुरू अपना खेल खेलकर चला जाता है तब उसका अनुभव पुस्तकों में पढ़ता है और लकीर पीटता है।

यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे पण्डित फकीरचन्द जी के रूप में ऐसे सच्चे सतगुरू मिले और मेरा जीवन ही बदल गया। जैसे कहा है

गुरू समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सतगुरू दीनी दान।।

ऐसे सतगुरू का जितना गुणगान किया जाए, उतना ही कम है।

वारि जांऊ मैं सतगुरू के, मेरा किया भ्रम सब दूर।
चन्द चढ़ा कुल आलम देखै, मैं देखूं भ्रम दूर।।

हुआ प्रकाश आस गई दूजी, उगिया निर्मल नूर।
माया मोह तिमिर सब नासा, पाया हाल हुजूर।।

विषय विकार लार है जेता, जारि किया सब धूर।
पिया पियाला सुधि बुधि बिसरी, हो गया चकनाचूर।।

हुआ अमर मरे नहीं कबहूँ, पाया जीवन मूर।
बंधन कटा छूटिया जम से, किया दरस मंजूर।।

ममता गई भई उर समता, दुःख सुख डारा दूर।
समझे बनै कहे नहीं आवै, भयो आनन्द भरपूर।।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, बजिया निरगुण तूर।।

यदि कोई महात्मा इस संसार में चुनौतियों का सामना करते हुए हर समय सन्त गति में रहता है तो वह धन्य है। ऐसी आत्मा के केवल दर्शन मात्र से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है। जैसे नानक साहब ने कहा है –

''नानक नदरी नदर निहाल।''

❑❑❑

फकीर लक्षण

सभी महापुरुष, आचार्य, गुरू, पीर, पैगम्बर जो अपने-अपने स्थान पर अपनी योग्यता के अनुसार मानव जाति को सहारा दे रहे हैं, धन्यवाद के पात्र है परन्तु इनमें शब्द अनुभवी, विवेकी सन्त सतगुरू की महिमा अवर्णनीय है। वह जीव को सहज युक्ति बताकर, लोक में सुखी जीवन जीने का रहस्य समझा कर मुक्त अवस्था का जीवन जीना बता देता है। जैसे कहा है –

साध हमारे सभी भले, अपनी अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, सबमें है सिर मौर।।

सत्पुरुष की आरसी, संतन की ही देह।
लखा जो चाहे अलख को, उनही में लख लेय।।

सतगुरू शब्द स्वरूप है, रहे अरस (आकाश) मंझार।
तू भी सुरत रूप है, रहो गुरू के लार।।

सच्चे सन्त फकीर कभी किसी मनुष्य जाति, विचार अथवा वस्तु से नफरत नहीं करते हैं। वह सभी को समान दृष्टि से देखते हैं। वह चिन्ता, फिकर से दूर निर्भयता से शान्ति का जीवन जीते हैं। अपनी रोजी रोटी खुद कमाते हैं और किसी का दान चढ़ावा आदि नहीं लेते और हर समय विचार, भाव से ऊपर या परमात्मा की मौज पर रहते हैं।

फकीर उर्दू का शब्द है। सच्चा सन्त ही फकीर कहलाता है। ऐसे फकीर की रहनी की तुलना राजे-महाराजाओं के जीवन में संक्षेप में ऐसे की गई है –

शाहों के दिलों में ताजे गीरान से अक्सर मीठा दर्द रहता है।
जो अहले सफा है उनके दिल में नूर का चश्मा बहता है।

फकीर बादशाहों का बादशाह होता है। निर्भय, निर्वैर व मस्त जीवन जीता है जबकि राजा-महाराजाओं का जीवन भय, चिन्ता व तनाव से युक्त होता है। तभी तो कहा है -

चाह गई चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए, वही शहनशाह।।

मेरे गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी को उनके गुरू महर्षि शिवव्रतलाल जी ने एक शब्द लिखा हुआ है कि तू फकीर बन जिससे मैं भी तेरे दर्शन करके तैर जाऊ। यह बात पूज्य गुरू गद्दी वाले महापुरुषों, गुरूओं व मुनि सज्जनों के लिए पढ़ने और समझने की बात है। एक महान् गुरू जिसने पाँच हजार पुस्तकें धर्म-कर्म की लिखी हैं, वह अपने शिष्य को क्या कहते हैं ?

तू फकीर है मेरे प्यारे, सुन फकीर की वाणी।
साधू कहें फकीर को भाई, साधु जग सुख दानी।।

पर उपकारी जन हितकारी, गुरू के आज्ञाकारी।
अवगुण त्यागी गुण के ग्राही, दया भाव चित धारी।।

निज चित सोधे मन परबोधे, जीव दोष नहिं दृष्टि।
अपने भाव में बरतें निसदिन, करें दया की वृष्टि।।

मोह माया और छल चतुराई छोड़े मूल विकारा।
पर हित लागी सहज विरागी, ज्ञान बुद्धि भण्डारा।।

दुःख क्लेश सह अपने सिर पर, जीव का करें सुधारा।
भव दुःख भंजन काम निकन्दन, जम से दें छुटकारा।।

धर कपास की गती विमल चित, निरस विशुद्ध कहावें।
सहें विपत्ति कठिनाई जग की, और का दोष छिपावें।।

सरल सुभाव रहें जग माहीं, अपना रूप सवारें।
औरन के अवगुण नहिं देखे, दया का मरम विचारे।।

सुख देवें दुःख हरें निरन्तर, क्षमा करें अपराधा।
हंसी खुशी आनन्द परमगति, अगम अलख अबाधा।।

नाम फकीर धराया तूने, हो फकीर अब सांचा।
जैसा नाम तो गुन भी वैसा, मन कर्म सहित सुवाचा।।

है फकीर का नाम पियारा, मैं फकीर का दासा।
तन मन धन फकीर पर वारूं, वसू सुसंग सुवासा।।

कठिन नाम है कठिन काम है, कठिन फकीर कमाई।
जग के भव दुःख नासे पल में, जग फकीर जब आई।।

जो फकीर मोहि दरशन देवे, अपना भाग सराहूं।
अपने तन के चाम की जूती, पग फकीर पहिनाऊं।।

मैं नहिं राम कृष्ण का सेवक, ईश ब्रहम नहिं जानूं।
मैं फकीर का नाम दिवाना, सबसे बढ़कर मानूं।।

मेरे साध हैं शब्द विवेकी, संत वंश कुल शोभा।
चरन कमल मस्तक पर धारूं, प्रेम मगन मन क्षोभा।।

एक घड़ी साधू की संगत, कटे मोह जम फांसी।
मेरी नजर में साधु फकीरा, सत चित आनन्द रासी।।

जो फकीर का दर्शन पाऊं, चरन सरोज पखारूं।
आप तरूं उसकी शरनाई, औरों को संग तारूं।।

साधु की संगत गुरू की सेवा, सहज हिं काम बनावे।
जिस पर साध की दृष्टि पड़ गई, फिर जग योनि न आवे।।

तरुवर सरवर मेघ का पानी, औरन को सुखकारी।
तैसे ही सुन मेरे फकीरा, साधू पर उपकारी।।

तू फकीर बन तू फकीर बन, तू फकीर बन भाई।
मैं भी तरूं फकीर चरन लग, ऐ फकीर सुखदायी।।

सुन ले कथा सुनाऊं तुझको, प्रगटे विमल विवेका।
जीव अनेक रहें जग अन्दर, पर फकीर कोई एका।।

इस शब्द का भाव मेरे मतानुसार यह है कि यदि कोई शिष्य मन, वचन व कर्म से पवित्र होकर सन्त गति में रहता है तो गुरू जो अभी मंजिल पर नहीं पहुंचा है, वह भी उसके दर्शन व संगत से वास्तव में सन्त गति में पहुंच सकता है। यह पण्डित फकीर चन्द जी महाराज मेरे गुरू थे। इनकी थोड़ी संगत यानी दर्शन से ही मेरा कल्याण हो गया। उन्होंने मुझे आज्ञा दी थी कि लालचन्द। नाम का अनुभव तो तुमको हो गया है। कुछ दिन सत्संग सुनकर, समझकर, खुद अपना अनुभव करके यदि तुम यह मेरा ज्ञान ठीक समझों तो इसका बिना मुआवजा लिए प्रचार करते रहना ताकि मनुष्य जाति भ्रम, शंका में न रहे और अपना जीवन सुख शान्ति से जी सके। मैं उनके आदेश से अपनी योग्यतानुसार काम कर रहा हूँ। जिन सज्जनों ने इस काम में मेरी तन, मन, धन से सेवा की है व सहायता दी है तथा अब भी जो सहयोग दे रहे हैं, उनके लिए मेरी यह प्रार्थना है कि गुरूदेव उनका व उनके प्यारे परिवार का कल्याण करें।

❑❑❑

भक्त को इष्ट का दर्शन

योग साधना में भक्त को जो अपने इष्ट के दर्शन होते हैं और तरह-तरह के चमत्कार घटित होते हैं, वह क्यों और कैसे होते हैं ? इस बात को धर्म में बहुत ही गुप्त रखा गया है। लोग चमत्कार को नमस्कार करते हैं। वो इस रहस्य को नहीं जानते हैं और न ही ये महात्मा जन इस राज को खोलना चाहते हैं। आश्रमों व डेरों में लम्बी भीड़ का यही एक मुख्य कारण है। परन्तु मेरे गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी दुनिया में पहले ऐसे महापुरूष हुए हैं, जिन्होंने अपनी पुस्तकों में इस रहस्य को बड़े ही स्पष्ट शब्दों में प्रमाण दे देकर लिखा हुआ है। उनका साहित्य पूरे विश्व के पुस्तकालयों में रखने के योग्य है ताकि बुद्धिमान् सज्जनों को धर्म कर्म का रहस्य मालूम हो जाए और उनकी भटकन छूट जाए।

अब मेरे साथ भी वैसी ही घटनाएं घटित हो रही हैं। मैंने लगभग 1960 में उनके आदेशानुसार यह सत्संग का काम शुरू किया था। उनके समय में ही मेरे साथ व सत्संगियों के साथ नए-नए चमत्कार घटित होने शुरू हो गए थे। मैं जब अपने गुरू जी के दर्शन करने जाता था तब उन्हें इन चमत्कार की घटनाओं के बारे में बताता था और वे जिसे जरूरी समझते थे उसे 'मनुष्य बनो' और 'शिव' नामक पत्रिका में छपवा देते थे। पहले तो मैं अधिकारियों को गुरू जी के पास ही भेजा करता था, परन्तु बाद में उन्होंने मुझे कहा कि जिसको तू ध्यान के योग्य समझता है, उसे खुद ही ध्यान की विधि बता दिया करो। परन्तु मैं ध्यान के लिए लोगों को उन्हीं के पास भेजता रहा और विशेष-विशेष को गुरू जी के फोटो का ध्यान बता देता था। लोगों के काम हो जाते थे और नए-नए चमत्कार घटित होते थे। मेरा खुद का योग साधन सहज सार शब्द का था जो अब भी अपने आप होता रहता है। वहां कोई रंग, रूप, रेखा नहीं है। केवल निज नाम का सहज अनुभव बना रहता है और समता की स्थिति बनी रहती है।

अब हाल यह है कि जब मैं सत्संग देता हूँ तो लगभग सभी गुरूओं के शिष्य जो उस स्थान पर होते हैं, मेरे सत्संग का लाभ उठाते हैं। कुछ लोग मुझसे प्रसाद बनवा कर ले जाते हैं और वे जिस इच्छा से आते हैं, उनकी पूरी हो जाती है और कुछ लोग जब अपने गुरू-पीर या अपने इष्ट किसी देवी-देवता का ध्यान करते हैं तो मेरा रूप प्रकट होकर उनकी तरह-तरह से सहायता करता है। यह घटना पहले तो कम होती थी परन्तु लगभग 20 वर्ष से यह अधिक घटित हो रही हैं। जैसे एक पवन कुमार चुरू का रहने वाला ब्राह्मण है। वह आसाम में किसी सेठ की मोटरों का मैनेजर है। वहां के अलफा लोगों से किराया उसके कैंडक्टर लेते थे। एक दिन वे सब नागा लोग मिलकर उसे मारने के लिए इक्ट्ठे हो गए। भयवश जब उसका मन इक्ट्ठा हो गया तो उसने अपनी खुली आंखों से देखा कि मेरे रूप ने प्रकट होकर उन नागा लोगों को आसामी भाषा में कहा कि यह तो अपना भाई है। यदि तुम किराया नहीं दोगे तो सेठ इसको नौकरी से निकाल देगा, यह गरीब आदमी है। इसके बच्चे भूखे मर जायेंगे। इसकी मदद करो। वह पवन कुमार कहता है कि उस दिन से वह सब नागे उसके मित्र बन गए हैं।

इसी प्रकार कुछ सत्संगी मेरे सत्संग को ध्यान योग में वहीं अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही सुन लेते हैं तो कोई कहता है कि मैं उनके ध्यान में प्रकाश में दर्शन देकर उनको तैराता हूँ। कई लड़के-लड़कियां कहते हैं कि आपके प्रसाद से हमको डॉक्टरी में प्रवेश मिल गया, इंजिनियरिंग में प्रवेश मिल गया और आपकी कृपा से हमारा परीक्षा परिणाम बहुत अच्छा आया। इसी तरह की और भी न जाने कितनी घटनाएं घटती रहती हैं जिनके बारे में सत्संगी आकर मुझे बताते हैं।

परन्तु प्यारे सज्जनों ! सच्चाई यह है कि मुझे इन घटनाओं के बारे में कुछ भी मालूम नहीं होता है। मैं कहीं किसी की मदद करने नहीं जाता हूँ और न ही मुझे यह पता है कि कौन मेरा ध्यान

करता है। बहुत से सज्जनों को तो मैं जानता भी नहीं हूँ। लेकिन मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूँ कि यह शक्ति विश्वासी सज्जन के मन में हैं, मेरे में नहीं। क्योंकि धर्म विश्वास का विषय है। जिस मनुष्य का मन भयवश, प्रेमवश या ध्यान योग की विधि से जब इक्ट्ठा हो जाता है तब उसका मन ही अपने विश्वास के अनुसार किसी देवी, देवता, राम, कृष्ण, मोहम्मद, ईसामसीह या गुरू, पीर पैगम्बर का रूप जिसमें उसकी आस्था है, प्रकट कर लेता है और फिर वह रूप उसकी सहायता कर देता है या भविष्य में होने वाली बात बता देता है। परन्तु मनुष्य समझता है कि बाहर से इष्ट आकर प्रकट हुआ है और वह यह सब जानता है जबकि यह खेल सारा उसके मन का है। यह बात सैन-बैन में पिछले महापुरूषों ने भी कहीं है।

''जिसकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।''

(तुलसी)

न कुछ किया न कर सका, न करने योग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भए कबीर-कबीर।।

कबीर साहब ने अपने शिष्य धर्मदास को यह रहस्य बता दिया था परन्तु उसको उसे प्रकट न करने की कसम दे दी।

'धर्मदास तोहे लाख दुहाई, सार भेद बाहर न जाई।।''

मैंने जो अब महात्मा हाजिर हैं, उनको पत्र लिखकर यह बात पूछी है कि पूज्य महात्माओं। शिष्य कहते हैं कि मेरा रूप उनमें प्रकट होकर उनकी सहायता करता है, परन्तु मैं कहीं नहीं जाता और न मुझे इस बात का ज्ञान है कि कौन मेरा ध्यान करता है ? क्या आप अपने शिष्यों में प्रकट होते हो ? तब कुछ महात्माओं ने उत्तर दिया कि आप जो कहते हैं ठीक है और कुछ ने इस बात का उत्तर ही नहीं दिया। अब राम, कृष्ण या गए हुए गुरू-पीर तो आकर यह रहस्य खोल नहीं सकते हैं कि हम नहीं आते हैं और न ही कोई देवी-देवता आकर

यह बात आज के मनुष्य को बता सकता हैं। अगर भक्त को कोई रूप नजर आता है तो वह उसके मन की शक्ति से बनाया हुआ ही रूप है जो सत्य नहीं है। यही वह सच्चाई है जिसे मैं आप लोगों को बताना चाहता हूँ। ये गद्दी पर उपस्थित आज के महापुरुष यदि मेरी इस बात पर थोड़ा विचार करें और अपने धन व मान-सम्मान की चार दिन की झूठी बात को त्याग कर मानवता को यह सच्चा ज्ञान दें कि प्यारे भक्तों। परमात्मा अंश रूप में आप लोगों के मनों में बैठा हुआ है जो आपके अन्दर सुरत तत्व के रूप में है। वही आप लोगों के मन पर आकर जिस रूप को आप मानते हैं या विश्वास करते हैं, रूप बनाकर आपको दर्शन देता हैं। उस रूप में हम नहीं आते हैं बल्कि यह आपके मन की शक्ति का ही खेल है। परमात्मा हर समय आपके साथ है। आपका रक्षक है और यदि इस सच्चाई या रहस्य को ये बुद्धिमान् समझदार सज्जन समझ जाए तो यह जो मनुष्य सम्प्रदायों में बंटकर धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़ा कर रहे हैं या पक्षपात कर रहे हैं, यह बन्द हो सकता है।

मैं शुरू से यह सच्चाई बताता आ रहा हूँ कि ऐ मानव! तुझे तेरे मन के विचार, श्रद्धा, विश्वास का ही फल मिलता है। यह प्रसाद भी जो मेरे से बनवा कर ले जाते हो, यह भी आप लोगों के विश्वास का ही फल है। मुझ में कोई सिद्धि-शक्ति नहीं है। क्योंकि कई सज्जन दूसरों के देखा-देखी प्रसाद तो ले जाते हैं, परन्तु विश्वास उनका होता नहीं है अतः उनके काम नहीं होते हैं और जहां तक मैं समझता हूँ यह सिद्धि शक्ति अन्य किसी देवी-देवता या गुरू-पीर में भी नहीं है। क्योंकि यदि देवी-देवता में यह शक्ति होती तो उनके धार्मिक स्थलों पर किसी प्रकार की दुर्घटना या अपराधपूर्ण घटनाएं न होती जबकि ये घटनाएं अक्सर देखने व सुनने में आती हैं और यदि इन पूज्य गुरूओं में यह शक्ति होती तो कम से कम वो अपने रोग, दुःख व कष्ट को तो दूर कर लेते। क्योंकि मैंने बहुत से महापुरुषों का अन्त बहुत बुरा देखा है।

प्यारे पूज्य महात्मा सज्जनों! जो मनुष्य को इस सच्चाई का ज्ञान देता है, वह गुरू ही पूज्य है। दुनिया में यदि कोई पूजने के योग्य है तो वह जीवित गुरू ही है जो मनुष्य को ज्ञान देकर उसकी प्रकृति के अनुसार व समझ-विवेक की योग्यता के अनुसार सहज योग की विधि बताकर यह सच्चाई बता दे कि परमात्मा हर समय तेरे अन्दर है। उसको किसी ने देखा नहीं है। उसका एक रूप बनाकर उसको पूर्ण मानकर उसका ध्यान करो। आप जो भी सच्चे मन से इच्छा करोगे, वह आपकी पूरी हो जायेगी परन्तु ज्ञान आपको किसी पूर्ण पुरुष जो मनुष्य रूप में हाजिर हो और जिसमें आपकी श्रद्धा, विश्वास हो, उससे होगा। यह देवी, देवता, पीर, पैगम्बर जो अब शरीर में हाजिर नहीं हैं, आपको ज्ञान नहीं दे सकते हैं। मनुष्य का गुरू मनुष्य ही होगा। गुरू नाम ज्ञान का है। ज्ञान मनुष्य को जो परमात्मा देगा, किसी मनुष्य रूप में ही आकर देगा। लेकिन वह मनुष्य पूर्ण अनुभवी योगी होना चाहिए और यह योगी वह नहीं हो जो केश, दाढ़ी रखकर या कपड़े बदलकर शरीर की वेश-भूषा बनाए हुए हो और अपने को सन्त, परम सन्त, श्री 1008 या कोई और उपाधि लगाए हुए हो। यह तो भक्तों का काम होता है कि वह जिस गुरू में विश्वास रखते हैं, उनको बड़ी-बड़ी उपाधि लगा देते हैं।

यह बात मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि मेरे प्रति विश्वास रखने वालों में एक डॉ. कमला हैं जिसने अपने विश्वास के अनुसार मेरी पुस्तकों पर मेरे नाम से पहले बहुत बड़ी उपाधि लिख दी है।

''परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी महाराज।''

यह डॉ. कमला शब्द और प्रकाश की साधवी है। यह समझती है कि पहले जिन महात्माओं के पास यह गई उनसे इसे कुछ नहीं मिला और जब से यह मेरे पास आई, उसका शब्द-प्रकाश मैंने खोल दिया है। परन्तु प्यारे पाठको ! मुझे इस बात का कोई ज्ञान नहीं है कि डॉ. कमला के अन्दर योग साधना करते हुए कब शब्द और प्रकाश

खुला था ? यह तो उसे अपने ही किसी शुभ कर्म के कारण अनुभव हुआ है। यदि मेरे में यह शक्ति होती तो मैं अपने घर वालों या गांव वालों में से किसी एक दो मनुष्य का तो शब्द व प्रकाश खोलकर समाधि लगवा देता। मेरी बात को समझो। अज्ञानी बनकर जगह-जगह नाक मत रगड़ो। जो कुछ आपको मिला है, वह आपके ही शुभ कर्म का फल है और जो आगे मिलेगा, वह भी आपके ही कर्मों का फल होगा। बाहर के गुरू की यह कृपा है कि वह मनुष्य को सच्चा मार्ग दिखा देता है। जगह-जगह भटकन से बचा देता है और सच्ची समझ, विवेक व अनुभव करने की आसान विधि बता देता है। इसलिए गुरू की बहुत महिमा है।

मैं यह सब अपने साथ घटित घटनाओं के आधार पर अपना अनुभव लिख रहा हूँ। कोई पुस्तकें पढ़कर रामायण, गीता तथा शास्त्रों की कथा नहीं बता रहा हूँ क्योंकि मैं कोई कथाकार नहीं हूँ जो आपको सुन्दर-सुन्दर संस्कार दे रहा हूँ। जो सच्चाई मैंने गुरू कृपा से अनुभव की है, मैं तो वही लिख रहा हूँ और आप भी किसी पूर्ण अनुभवी पुरूष की संगत में बैठकर अनुभव कर सकते हो। यह अध्यात्म ज्ञान की सच्चाई लिखने व बतलाने में नहीं आ सकती है, बस अनुभव की जा सकती है। पहले सत्संग सुनकर समझ, विवेक लो और मन के भ्रम, शंकाओं को दूर कर उसे साफ करो। फिर सतगुरू के पास श्रद्धा, विश्वास रखकर बैठो, दर्शन करो और वचन सुनो। बस फिर देर लगने की कोई बात ही नहीं है। परन्तु आप आम आदमी की बात सुनकर किसी भ्रम में मत पड़ जाना क्योंकि बिना गुरू के काम नहीं होगा। अतः परम शान्ति व परम आनन्द तक पहुंचना है तो सोच-समझ कर, देख-परख कर ही गुरू करना फिर उसको भगवान् मानकर ही आप परमात्मा तक पहुंच सकोगे। जैसे -

''गुरू पर डालूं तन मन वार, गुरू पर जाऊं मैं बलिहार।''

''गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी वा गुरू की, जिन गोविन्द दियो बताय।''

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं, केहि विधि आवे हाथ।
कहें कबीर तब पाईये, जब भेदी लीजे साथ।।
भेदी लीना साथ कर, दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पन्थ था, पल में दिया लखाय।।

इस सन्त मत को ही गुरू मत कहते हैं। गुरू ने अपने जीवन में सहज येाग की विधि से परम शान्ति व परम आनन्द का अनुभव किया हुआ होता है। वह शिष्य की प्रकृति को देखकर उसके अधिकार, संस्कार के अनुसार उसको आसान मार्ग बता देता है। परन्तु कुछ लोग किसी सांसारिक कष्ट से दुःखी होकर गुरूमत में शामिल हो जाते हैं, देखने में वह गुरू के शिष्य भी बन जाते हैं और सेवा भाव भी दिखाते हैं कि हम गुरू महाराज जी के बड़े सेवक हैं और फिर वह गुरू को शिक्षा देना शुरू कर देते हैं और यह चाहते हैं कि गुरू महाराज जैसा वह चाहते हैं, वैसा ही सत्संग में बोले और जैसे वह चेला चाहे, वैसा ही गुरू जी करें। ऐसे चेले खुद तो दुःखी रहते ही हैं और साथ ही गुरू पंथ को भी कलंक लगाते हैं।

गुरू को मानुष जानते, चरणामृत को पान।
ते नर नरके जायेंगे, जन्म-जन्म हो स्वान।।

गुरू किया है देह को, चरणामृत को पान।
कहे कबीर सेवक नहीं, चाहे चौगुना दाम।।

गुरू एक इष्ट है, आदर्श है। मैं यह सत्संग का काम बहुत समय से करता आ रहा हूँ। गुरू महाराज जी के आदेशानुसार अपनी

समझ, विवेक व अनुभव के आधार पर किसी को कुछ बता देता हूँ और उसके श्रद्धा, विश्वास के अनुसार उसका काम हो जाता है तो मैं उसे स्पष्ट बता देता हूँ कि भाई यह तेरे ही आस-विश्वास व कर्म का फल है। मेरा उसमें कोई हाथ नहीं है और जब कोई नाम के दीक्षा की चाह या इच्छा करता है तो बता देता हूं कि वहां चले जाओ और दो-चार सत्संग सुनकर यदि आपका विश्वास बन जाए तो दीक्षा ले लेना। नहीं तो जिस महात्मा में विश्वास हो, वहां से नाम ले लो।

मैं इस नाम का रहस्य जानता हूँ कि नाम तो जीव के अन्दर है, परन्तु संस्कार तो बाहर से ही मिलेगा और यह भी जानता हूँ कि कितने पूज्य महात्मा सज्जन इस नाम के अनुभवी है ? जीव को सहारा चाहिए और यह सही सहारा कोई जीवित महापुरूष ही देगा। परन्तु मेरे सत्संगों में कुछ सज्जनों को वहां बैठे हुए ही इस नाम का अनुभव हो जाता है। किसी में रूप प्रकट हो जाता है, किसी में शब्द और किसी में शब्द व प्रकाश दोनों प्रकट हो जाते हैं ऐसे सज्जनों को जो मैं उचित समझता हूँ, विशेष सलाह दे देता हूँ। वास्तव में नाम के विशेष अधिकारी व योग्य सज्जन वो ही हैं, जिनकी यह दुनिया बनी हुई है। जिन्हें किसी चीज का अभाव व शरीर का रोग नहीं है और जो किसी प्रकार के शारीरिक व मानसिक उलझन में नहीं है। मुझे ऐसे कई सज्जन मिले हैं और वह अब मेरे सम्पर्क में है। ये सज्जन उत्तम प्रकृति के हैं और मेरा मान-सम्मान करते हैं। परन्तु मैं मन से इनको मेरे से बहुत उत्तम समझता हूँ। ऐसे लोग ही वास्तव में नाम के अधिकारी होते हैं -

जो रहिमन उत्तम प्रकृति, का कर सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापे नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।

इस प्रकार मेरे विश्वासी सज्जनों के साथ बहुत सी चमत्कारी घटनाएं घटती रहती हैं जो उनके विश्वास के कारण ही होती हैं। मनुष्य के मन में जबरदस्त शक्ति है और जो कुछ ब्रह्माण्ड में है, वह सब

कुछ चांद, सूर्य, सितारे, लोक-लोकान्तर सूक्ष्म रूप से मनुष्य के अन्दर हैं। पहले भी यह बात महापुरूषों ने कही हैं -

''जो पिंडे सो ब्रह्माण्डे।''

इसका प्रमाण यह है कि भक्तों को उनके इष्ट का दर्शन होना, ध्यान योग में नए-नए चमत्कारों का होना, रंग-रूप आदि तरह-तरह के नजारों का दिखना तथा लोक-लोकान्तरों का अनुभव होना - यह सब उसे भासते हैं जो उसके मन पर जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार देखने, सुनने व पढ़ने से पड़े हुए होते हैं, वही बड़े-बड़े आकार, रंग-रूप बनाकर भासते है जो सत्य नहीं है। धर्म-कर्म में इसी ही का नाम काल और माया है। साधक के सब काम व अनुभव उसके विश्वास व योग साधन से ही होते हैं। जैसे कहा है -

एक विश्वास राखो मन माहि।
नानक सर्व रोग कट जाहिं।।

''घट में है सूझत नाहिं, लानत ऐसी जिन्द।
नानक इस संसार को, हुआ मोतिया बिन्द।।''

राधास्वामी रक्षक जीव का, जीव न जाने भेद।
गुरु चरित्र समझे नहीं, रहे कर्म की खेद।।

ना कुछ किया न कर सका, न करने योग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भयो कबीर-कबीर।।

❑❑❑

पद का औचित्य

आज विश्व में सभी पदों की आयु व योग्यता बनी हुई है। एक चपड़ासी, लिपिक, सैनिक जवान व अधिकारी सबके लिए शिक्षा-स्तर, सेवा में आने व अवकाश की उम्र है। परन्तु देश में दो बहुत ही महत्वपूर्ण पद हैं - राजनेता व धर्म गुरू।

'राजनेता' जो देश पर राज करते हैं, पूरी मानवजाति की भलाई व जीवन के रक्षक तथा जिम्मेवार हैं, मानवजाति ही इन्हें चुनकर इस कार्य के लिए नियुक्त करती है। परन्तु कुर्सी मिलते ही ये सब अपनी जिम्मेवारी व प्रजा से किए हुए वायदों को भूल जाते हैं। इनके लिए कानून ने कोई शैक्षणिक योग्यता निर्धारित नहीं की है। एक अनपढ़ व्यक्ति भी इस पद के लिए चुनाव लड़ सकता है। कैसा अन्धा है हमारे देश का कानून। पूरे देश की सत्ता जिसके हाथ है, वही अशिक्षित होकर बड़े-बड़े पदाधिकारी, शिक्षित व्यक्तियों पर अपनी हकूमत चलाता है फिर कैसे न्याय की आशा की जा सकती है?

आजकल अखबारों में रेडियो व टेलीविजन पर इन राजनेताओं की करतूतें हर रोज जनता के सामने आ रही है। इसके लिए मुझे अधिक लिखने या बताने की जरूरत नहीं है। सभी इनकी गतिविधियों व कार्यों को जानते हैं। एक दिन मैं रोडवेज की बस से सफर कर रहा था। बस के कण्डैक्टर और एक मुसाफिर के बीच बस किराए की बात हो रही थी। मुसाफिर ने बस कण्डैक्टर से कहा कि मैं अपने गांव तक एक रुपया किराया देता हूँ। तुमने मुझसे दो रुपये क्यों लिए हैं ? यह बहस उनकी कई देर तक चलती रही। आखिर कण्डैक्टर ने कहा कि मैंने तो एक रुपया ही ज्यादा लिया है। तू सुखराम और लालू यादव जैसों को देख। उनका न जनता कुछ करती है न सरकार और न ही न्यायालय। मेरा एक रुपया तो तेरे को बहुत तकलीफ दे रहा है, क्योंकि मैं एक मामूली कण्डैक्टर हूँ। जो पूरे देश को खा रहे हैं और जहां करोड़ों रूपयों की बात हैं, उनको न कोई सजा है

और न कोई कानून। अब यह तो हमारे देश की स्थिति है। जहां रक्षक ही भक्षक बन जाए या बाड़ ही खेत को खाने लगे तो क्या किया जा सकता हैं ? प्रजा तो वही करेगी जो राजा करेगा। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली बात है। हां, कुछ व्यक्ति सच्चे व ईमानदार भी हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। और उनकी यहाँ चर्चा भी नहीं है। अब जहां तक आयु की बात है। वह यह है कि मनुष्य की शारीरिक बनावट ऐसी बनी हुई है कि कुछ उम्र के बाद शरीर सही नहीं रहता। वह कमजोर होना शुरू हो जाता है। अब जिसका शरीर स्वस्थ नहीं है तो मन भी स्वस्थ नहीं रह सकता क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है। अत: ऐसा व्यक्ति जो खुद शरीर व मन से दु:खी हो तो वह देश के लोगों की भलाई क्या सोचेगा ? और क्या कानून या विधि-विधान बना सकेगा ? और ये राजनेता अपनी पिछली उम्र में जो इनके आराम करने की अवस्था है, उसमें भी आराम करना नहीं चाहते और मरते दम तक पद की कुर्सी से चिपके रहना चाहते हैं। और सभी अन्य पदों के लिए तो अवकाश निवृति निर्धारित है परन्तु इनके लिए नहीं जिनके कन्धों पर सारे देश की सत्ता निर्भर करती है। वैसे यह बात जनता पर ही हैं क्योंकि जनता ही इन्हें नियुक्त करती है, परन्तु जनता इतनी शिक्षित नहीं है। इसका इलाज तो परमात्मा के सहारे ही है।

अब रही बात धर्म गुरूओं की। धर्म गुरू मनुष्य के सुख व शान्ति का आखिरी सहारा होते हैं। धर्म शुरू से रहस्य में चला आ रहा है। जितने भी आज तक आत्म ज्ञान विषय के अनुभवी महापुरूष हुए हैं, उन्होंने अपने भक्त व विश्वासियों से धर्म के रहस्य को छिपा कर रखा है और आज भी यह बात साफ नहीं बताई जा रही है। जैसे नीचे के शब्द पढ़े जो बिल्कुल रहस्य में हैं -

हंसा हंस मिले सुख होई।
इहां तो पाति है बगुलन की, कदर न जाने कोई।

जो हंसा तोरे प्यास छीर की, कूप नीर नहिं होई।
यह तो नीर सकल ममता को, हंस तजा जस चोई।।

षट दरसन पाखण्ड छानवे, भेष धरे सब कोई।
चार वरन ओर वेद किताबे, हंस निराला होई।।

यह जम तीन लोक को राजा, बान्धे अस्त्र संजोई।
शब्द जीत चलो हंस म्हारे, तब जम रहि रोई।।

कहै कबीर प्रतीत मान ले, जीव नाहिं जाये बिगाई।
ले बैठारो अमर लोक में, आवागमन न होई।।

शब्द

दूर गगन तेरो हंसा हो, घर अगम अपार।
नहीं वहां काया नहीं वहा माया, नहीं त्रिगुण पसार।।

चार वरण ओं हों नाहि, न है कुल व्यवहार।
नौ छै विद्या नाहि, नहीं वहां वेद विचार।।

जप तप संजम तीरथ नाहीं, न है नियम आचार।
पांच तत्व नहीं उत्पत्ति भई, ले सो परे के पार।।

तीन देव न तेतीस कोटि, न है दस औतार।
सोला शंख के आगे होई, समरथ का दरबार।।

सेत सिंहासन आसन बैठे, जहां शब्द झंकार।
पुरुष रूप क्या बिष्णु महिमा, तिन गति अपरम्पार।।

कोटि भानू की शोभा जिन के, एक-एक रोम उजार।
क्षर अक्षर दोनों से न्यारा, सोई नाम हमार।।

सार शब्द को ले के आया, मृत्यु लोक मंझार।
चार गुरू मिल थापल हो, जग के हैं कढिहार।।

इन शब्दों में ज्ञान को बड़े ही रोचक व रहस्यमय ढ़ंग से कहा गया है। इन शब्दों के भावों को त्रिकुटी या ॐ के स्थान पर योग साधन करने वाले योगी ही समझ सकते हैं, अन्य नहीं। इस धर्म के रहस्य को मेरे गुरू महाराज पं. फकीरचन्द जी ने साफ खोल कर स्पष्ट किया है और दूसरा मैं अपने अनुभव के आधार पर साफ खोल कर बता रहा हूँ कि धर्म मनुष्य के आस-विश्वास का खेल है। मैं इस धर्म-कर्म के रास्ते पर सन् 1956 से आया हूँ। 1941 में सेना में भरती हुआ और तीन महिनों की सैनिक शिक्षा के बाद अधिकारी पद मिल गया तथा बहुत जल्दी-जल्दी उन्नति होती चली गई। बड़े अधिकारी सब अंग्रेज थे। यह कोई मेरा भाग्य या शुभ कर्म था कि उन अधिकारियों की मेरे पर बहुत मेहरबानी रही और मैं बहुत जल्दी ही सूबेदार के पद पर पहुँच गया। फिर कोई विशेष शुभ कर्म के कारण धर्म-कर्म के संस्कार के प्रभाव से कई महात्माओं से मिला और आखिर 1956 में परम सन्त पं. फकीरचन्द जी के पास होशियारपुर पंजाब में उनके घर गया। वहां 15 या 20 मिनट की संगत से उनकी पवित्र विकिरण धारा (Radiation) से आन्तरिक नाम का अनुभव हो गया। जिसकी धर्म कर्म में बहुत चर्चा है और आज 83 वर्ष की आयु में भी वही अनुभव सहज होता रहता है।

सहजे ही धुनि होत है, हरदम घट के माहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहि।।

तब से लेकर आज तक बहुत ऋद्धि-सिद्धियों का अनुभव मुझे

हुआ और मेरे प्रति विश्वास करने वालों के साथ नित नई-नई चमत्कारी घटनाएं घटती रहती हैं जो सब मनुष्य के मन की शक्ति व विश्वास का खेल है। कोई भी इष्ट बाहर से आकर भक्त के मन में प्रकट नहीं होता है। अपितु भक्त का मन ही देवी-देवता या गुरू-पीर-पैगम्बर का रूप बना कर उसे भासता है। मैं इस बात का प्रमाण हूँ क्योंकि मेरा रूप विश्वासी भक्तों में जगह-जगह प्रकट होता है। जबकि मैं कहीं आता-जाता नहीं हूँ और न ही मुझे इस बात का ज्ञान होता है। परन्तु आज का कोई भी महात्मा अपने सत्संगों में इस बात को नहीं बता रहा है कि मैं किसी भक्त के अन्दर प्रकट नहीं होता हूँ अपितु यह भक्त के मन की शक्ति व विश्वास ही काम करता है। यह एक बहुत बड़ा रहस्य है। ये पूज्य महात्मा सज्जन भोले-भाले भक्तों की आँखों में धूल झोंक कर अपने आश्रम बनाते हैं। इस बात को पर्दे में रखकर लोगों को लूटते हैं और स्वयं देश-विदेश की सैर करते हैं। साफ बताने पर यदि कोई समझ-बूझ से आश्रम की सेवा करे तो कोई हरज नहीं है। ज्ञान, समझ के बाद यदि भक्त गुरू की या उसके आश्रम की सेवा तन-मन-धन से करे तो वह धन्य हैं। परन्तु बहुत कम ऐसे पूज्य महात्मा है जो अनुभवी है और शिष्यों को सच्चा ज्ञान देते हैं। यह बात गुरू और शिष्य दोनों के लिए हैं। यदि शिष्य का कोई शुभ कर्म हो तब ही कोई पूर्ण अनुभवी तथा मन, वचन व कर्म से पवित्र गुरू उसे मिलता है और तब उसके दीन-दुनिया के सब काम सहज में बन जाते हैं। नहीं तो आप चारों तरफ गुरू-शिष्यों की भीड़ देख ही रहे हैं। सब अशान्त नजर आ रहे हैं -

''गुरू चेला व्यवहार जगत में झूठा बरत रहा।
का से कहूं समझ नहीं काऊ, धोखे धार बहा।।''
गुरू तो मान प्रतिष्ठा चाहें चेला स्वार्थ संग बन्धा।
सच्चा मार्ग सुरत शब्द का सो अब गुप्त भया।।

तो मैंने आपकी सेवा में बताया कि आज पूरे विश्व में दो

पद हैं जिनमें न शैक्षणिक योग्यता है और न आखिरी उम्र की हद है जो बिल्कुल अनुचित है। सब उनकी मर्जी चल रही है। अब इस विषय में मेरा अनुभव यह है कि यह सब (Law of Nature) के अन्दर हैं, यानी प्रकृति का नियम है। समय के हेर-फेर में यह अपने आप मजबूर हो जायेंगे और यह हालात सदा कायम नहीं रह सकेंगे।

बदलते हैं युग तो बदलती है दुनिया।
न आज राम है तो न उसकी मर्यादा।।
समय के फेर ने सबको है बदला।
भला कौन है ऐसा जो उससे बच निकला।।

एक तो (Law of Land) है यानी देश के नियम कानून जो समय-समय पर उसके मनुष्य बनाते हैं और बदलते हैं। दूसरा है प्रकृति का नियम (Law of Nature) जिससे जीवन धाराएं सूर्य की किरणों की तरह निकलती हैं और लोक-लोकान्तर, चांद, सूरज, जंगल, पहाड़, समुद्र व जीव-जन्तु बनते रहते हैं व बिगड़ते रहते हैं और फिर उसी में समा जाते हैं। तत्व का कभी नाश नहीं होता है। वह बदलता रहता है। साधारण बुद्धि का मनुष्य कह देता है कि भगवान् सब ठीक कर देगा।

प्यारे पाठको ! मैं आध्यात्मिक मनुष्य हूँ। मुझे नेता या धर्म गुरूओं से कोई शिकायत नहीं है अपितु मेरा उनके प्रति विशेष प्यार व श्रद्धा भाव है। मैं सभी मनुष्यों में परमात्मा का ही अंश देखता हूँ। वही सुरत सबमें खेल करती नजर आती है।

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।
हर शै में जलवा तेरा हूबहू है।

यानी सभी मनुष्य उस परमात्मा के हैं। परन्तु जैसे जिसके कर्म हैं, वह वैसा करने को मजबूर है। जो चोरी का नाटक करने आया है, वह चोरी करने को मजबूर है। यह उसके वश की बात नहीं है।

जो जैसे संस्कार लेकर आता है, वह वैसा ही करने को विवश है। अब किसको बुरा कहें और किसको भला। मेरी नजर में यह सब उसका खेल है। इसलिए मेरा सभी से प्यार है। क्योंकि :-

आपहि माली बाग लगावे, सींचे आप फुलवारी।
आपहि फूल कली है आपै, आप बना बनवारी।।

कोयल बनकर कूक सुनावे, बैठ आम की डाली।
बौर देख बौरा हो जावे, बौरापन से न्यारी।।

आपहि बौर आप अमृत रस, आप आप रस धारी।
आपहि चखे आम रस रसना, आप करे रखवारी।।

फूल मध्य है बास सुबासा, रंग रूप गुलकारी।
आपहि निरखै अपनी शोभा, निरखत होत सुखारी।।

यह तो भेद कोई गुरूमुख पावै, गुरूपद होय भिखारी।
हम तो सार मर्म लख पाया, राधास्वामी की बलिहारी।।

❑❑❑

समय के अनुसार महापुरुषों का ज्ञान

समय की आवश्यकता के अनुसार हर युग या समय में ऋषि, मुनियों व महापुरूषों ने प्रकट होकर मानवता के दु:ख को दूर करने के लिए अपने-अपने ढ़ंग व तरीके से ज्ञान दिया है। जैसे -

1. मनु ने मनुस्मृति लिखकर संसार में जीने के लिए उचित सामाजिक नियम बनाए जिन पर चलकर मनुष्य अपना अनुकूल जीवन जी सके।
2. भृगु ने तप किया और भृगु संहिता तैयार कर कर्मकाण्ड या कर्मों के फल से बचने का उपाय बताया। ज्योतिष शास्त्र का यह सबसे बड़ा ग्रन्थ है।
3. वशिष्ट जी ने योग वशिष्ट लिख कर राम के वैराग्य को दूर करके संसार की मर्यादा रखने और संसार का भार उतारने की शिक्षा दी।
4. व्यास जी ने जीवन के हर पहलू पर दृष्टि डालने के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की।

इस युग में सन्तों का अधिक प्रभाव है जो शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य और आत्मिक व निज रूप का अनुभव करने की शिक्षा देते है। वैसे संसारी लोगों के लिए ऋषियों की शिक्षा ही बेहतर है। सन्तों का मार्ग निवृत्ति का है। इनका मार्ग है कि मनुष्य अधिक समय आत्मा-परमात्मा की खोज में लगाकर अपने निज घर जाने में लगाए। सन्त जाति, दान, धर्म, कर्म पर अधिक जोर नहीं देते। मानवता ही इस युग का मुख्य धर्म है। चौथे पद के अधिकारी अब बहुत कम है।

सन्त के तीन मुख्य दर्जे हैं -

1. सन्त, 2. सन्त सतगुरू, 3. वक्त सतगुरू।

1. सन्त : सन्त वह है जो हर समय सम अवस्था में व अपने निज रूप में स्थित रहता है।
2. सन्त सतगुरू वह है जो दूसरे की प्रकृति और स्थिति को देखकर

उसको उचित उपाय व ढ़ंग बताता है।

3. वक्त सतगुरू वह होता है जो समयानुकूल शिक्षा को बदल जाता है जिससे आम जनता में एकता व प्रेम के भाव स्थापित हों और वह इस सत, अलख, अगम गति को भी प्राप्त कर सके।

इस युग में मानवता या इन्सानियत की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि विभिन्न मजहब या धार्मिक सम्प्रदाय वालों ने आज लोगों को धर्म के नाम पर इतना कट्टर बना दिया है कि कोई हिन्दू, कोई मुसलमान, कोई सिक्ख, कोई ईसाई, कोई जैनी, कोई आर्यसमाजी तो कोई राधास्वामी बना बैठा है। धर्म अपने आप में कोई भी बुरा नहीं है परन्तु अज्ञानता के कारण लोग एक-दूसरे के धर्म की निन्दा करते हैं व आपस में ईर्ष्या, द्वेष व नफरत के भाव रखते हैं। सन्त मत मनुष्य को मनुष्य बनाने की सच्ची शिक्षा देता है। लेकिन यह शिक्षा वही दे सकता है जो स्वयं सन्त गति में रहने वाला हो। उसी की शिक्षा लोगों पर अपना प्रभाव डाल सकती है क्योंकि मनुष्य का शरीर एक रेडियो स्टेशन है जिससे मानसिक धारें निकलती रहती हैं। जो महापुरूष स्वयं सच्चे, विवेकी व पूर्ण अनुभवी नहीं है, वे अपने शिष्यों पर पूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकते हैं। जैसे कहा है -

''गुरू और पारस में यही अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करे, गुरू कर ले आप समान।।''
''साचे गुरू की यह पहचान, चेला करे वह आप समान।''

आजकल चारों ओर गुरूओं की बहुत भीड़ देखने को मिलती हैं फिर भी लोग शान्त नहीं है क्योंकि ये गुरू महात्मा लोग शिष्यों की संख्या बढ़ाने व डेरे, धाम बनाने में ही लगे रहते हैं और शिष्यों को सच्चाई नहीं बताते हैं। जो महापुरूष किसी भी सांसारिक, सामाजिक या निजी स्वार्थ के लिए गुरूयायी करता है, वह सतगुरू

नहीं हो सकता है। ऐसे गुरूओं और गृहस्थियों में कोई अन्तर नहीं है। यदि गृहस्थी सांसारिक बन्धनों से बन्धा है तो ये गुरू लोग आश्रमों व डेरों से बन्धे हुए हैं। जो खुद बन्धन में है वह दूसरों को क्या मुक्त करेंगे ? वास्तव में दुनिया ने गुरूमत को समझा नहीं है। वह तो इस देह को गुरू मानती है, जबकि गुरू नाम है -' समझ, विवेक, अनुभव व ज्ञान का। यदि लोगों को इसकी सही समझ आ जाए कि असली परमात्मा तो उनके अन्दर बैठा है तो उन्हें कहीं बाहर भटकने की जरूरत नहीं है और ये आपसी पंथ व सम्प्रदायों के सब झगड़े खत्म हो सकते है। बाहरी गुरू तो उन्हें संस्कार देकर, सच्चाई बताकर उनका मार्ग प्रदर्शन करता है।

सन्त मत बहुत ऊँचा है। इसमें तीन चीजें ही मुख्य हैं - सतगुरू, सत्संग व सतनाम। सतगुरू जीव के हालात देखकर उसके सुधार का तरीका बेहतर जानता है। वह उसे इस दुनिया में सुखी जीवन बिताने का सही रास्ता बताता है और सुन्दर-सुन्दर विचार व शिव संकल्प रखने पर बल देता है। इसलिए सत्संग में सतगुरू की बात को समझना व उस पर अमल करना अत्यन्त अनिवार्य है। जीवित व पूर्ण अनुभवी गुरू ही जीवों को भ्रम, शंकाओं से निकाल कर उन्हें निज घर पहुंचा सकता है। किसी देवी-देवता या मृतक गुरू के प्रति श्रद्धा रखने से इच्छा-पूर्ति तो हो सकती है लेकिन ज्ञान नहीं। ज्ञान तो जीवित गुरू से ही मिलेगा। अत: किसी जीवित अनुभवी गुरू से नाम लेकर योग साधना से मन की वृत्ति को एकाग्र करना सीखो। इस कलियुग में सतगुरू के ध्यान व नाम से मन की वृत्ति को एकाग्र करने से ही शान्ति मिल सकती है। जैसे राधास्वामी वाणी में कहा है -

गुरू का ध्यान कर प्यारे, बिना इसके नहीं छुटना।
नाम के रंग में रंग जा, मिले तोहि धाम निज अपना।।

❑❑❑

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं

अध्यात्म विषय में सन्तों ने जो भी दान, पुण्य, पूजा, पाठ, जप, तप, सुमिरन, भजन, योग-युक्ति, साधना आदि के विधि-विधान अपनी-अपनी प्रकृति व संस्कार के अनुसार बताए हैं, वे उस समय के अनुसार उस समय में विशेष प्रकृति वाले लोगों के लिए ठीक रहे होंगे और शायद अब भी कुछ सज्जनों के लिए ठीक हों। परन्तु प्यारे पाठकों! समय के साथ हर बात में कुछ बदलाव आता है। यह ज्ञान कहानी किस्सों की बात या कथा-कीर्तन से आगे अनुभव करने का है। मनुष्य इस लोक में 16 संस्कारों में जीवन जीता है। यानी यहां इस स्थूल लोक का जीवन संस्कारों में बन्ध कर जीना होता हे। हर धर्म-सम्प्रदायों के गुरू-पीर व पैगम्बरों ने अपनी-अपनी समझ, विवेक व अनुभव के आधार पर सुख शान्ति व खुशी से जीवन जीने के विचार से जो उस समय ठीक समझे, वे संस्कार दिए हैं। ये संस्कार किसी में कम है और किसी में ज्यादा। और अब यदि ध्यान से देखा जाए तो हर धर्म-सम्प्रदाय के मनुष्यों को जो संस्कार दिए जाते हैं, वह वैसा ही करना कम और उस तरह रहना ज्यादा ठीक समझता है तथा दूसरे के धर्म व सम्प्रदाय के मनुष्यों को गलत समझता है। क्योंकि वह अपने-अपने सम्प्रदायों के संस्कारों से बन्धा है। उसमें हठधर्मिता व कट्टरपना है। हिन्दू समझता है हिन्दुओं का धर्म ही सच्चा है। मुसलमान समझता है कि धर्म तो इस्लाम ही है। ईसाई समझता है सबसे बड़ा ईसाई धर्म है। यह संस्कार जो जिसने ग्रहण किए हैं, वो हैं। इनमें सच्चाई नहीं है। इस भ्रम को सन्त सतगुरू सत्संग करा कर व योग साधना करा कर 'मनुष्य क्या है ?' उसका असली रूप योग से खुद को अनुभव करा कर दूर करते हैं जिससे जीव को इस हकीकत का पता चल जाता है कि यह तो परमात्मा का एक छोटा सा जर्रा सुरत तत्व के रूप में आकर यहां खेल कर रहा है। वह न हिन्दू है, न मुसलमान है और न ईसाई है। यह तो जिस धर्म-सम्प्रदाय

में तुम पैदा हुए हो, उन्होंने संस्कार देकर तुमको बना रखा है। सन्त बड़े दयालु होते हैं। मनुष्य जो यहां चारों तरफ से बहुत से बन्धनों में बन्धा हुआ है उसको सन्त सत्संग देकर, योग साधना कराकर, उसको अपना असली रूप दिखाकर सब संस्कारों व विचारों के बन्धन से मुक्त कर देता है और फिर ज्ञान देता है कि ज्ञानी यहां परमात्मा का ही रूप है जो मनुष्य रूप में यहां जीवों के कल्याण के लिए आता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या मैं मुक्त हो गया हूँ या यूँ ही अक्ल के घोड़े दौड़ा रहा हूँ? प्यारे पाठको ! यह मुक्त अवस्था मुझे गुरू कृपा से लगभग 1962 से प्राप्त है। परन्तु सच्चाई यह है कि 100 प्रतिशत (सौ फीसदी) अब भी नहीं है। कभी-कभी बाहर के प्रभावों से नीचे कुछ समय के लिए विचारों में आ जाता हूँ परन्तु फिर जल्दी ही सम्भल जाता हूँ।

तो फिर यह बन्धन व मुक्त अवस्था क्या है ? हमारे जितने विचार, संस्कार या अहसासात है, उनको सच मान कर उनमें खेलना व दु:खी-सुखी होना ही हमारा बन्धन है और उनको सत्य न समझकर इस मनुष्य जीवन के खेल को करते हुए इनके प्रभावों में न फंसना ही मुक्ति या मुक्त अवस्था है और यह ज्ञान किसी अनुभवी सतगुरू से इस शरीर के रहते और इसमें खेलते हुए ही मिलेगा।

''तन छूटे जिव मिलन कहतु है, सो सब झूठी आसा।
अब हूँ मिला सो तबहुँ मिलेगा, नहि तो जमपुर बासा।।''

इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सन्त सतगुरू के सत्संग, संगत व योग साधना की अत्यन्त आवश्यकता है।

''सत्त गहै सतगुरु को चीन्है, सत्त नाम विश्वासा।
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।।''

मैंने इस मुक्त अवस्था का अनुभव किया है और अब कर रहा हूँ।

सभी साधु सन्त जो मनुष्य को सुख-शान्ति देने के लिए काम कर रहे हैं, भले हैं। परन्तु कबीर साहब अपना अनुभव बता रहे हैं कि जो सुरत-शब्द योग के विवेकी और सार शब्द के अनुभवी हैं, वे सबमें उत्तम यानी ऊंचे है। जैसे कहा है -

साध हमारे सभी भले, अपनी-अपनी ठौड़।
शब्द विवेकी पारखी, सब में है सिर मौड़।।

ऐसे सन्त अति पूज्य है। उनके दर्शन और वचन सुनने से मनुष्य इसी ही जन्म में जीवन जीते हुए मुक्त पद, निर्वाण पद या मोक्ष पद का अनुभव कर सकता है। प्यारे सज्जनों! मेरा अनुभव कबीर साहब के शब्द से मेल खाता है। मेरे साथ यह घटना घटी हुई है। मुझे ऐसे सन्त जीवन में मिले और उनके दर्शन मात्र से यह अनुभव कुछ ही मिनट में हो गया जो कई जन्मों की कमाई से और त्याग, तप व यत्न से होता है। मैं अपनी आंखों से सत्संगी व योगी साधु सज्जनों को देखकर ही आपको अपना अनुभव बता रहा हूँ। यह मेरे गुरू महाराज पं. फकीरचन्द जी और आप सभी सन्तों के आशीर्वाद व प्यारे सत्संगी भाई, बहन, बेटियों की शुभ भावना का ही फल है जो मुझे यह तत्व ज्ञान संसार का सुन्दर जीवन जीते हुए अति सहज में प्राप्त हुआ है। और अब मैं यह गुरू ज्ञान मेरे गुरू महाराज जी की आज्ञा से बांटना चाहता हूँ। यदि आपको मेरी पुस्तकें पढ़ने से सुख-शान्ति मिलती है और भ्रम दूर होते हैं तो मैं अपने आपको धन्य समझूंगा।

अतः यह ज्ञान कथनी का नहीं, अनुभव का है। जैसे कहा है-

''यह करनी का भेद है, नाहिं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार।।

ज्ञानी की दृष्टि में यहां कुछ भी भला-बुरा नहीं है। सब उसी का खेल है ? मैं अधिकतर इसी अनुभव में रहता हूँ। इसमें कुछ

करना-धरना नहीं पड़ता। सहज अवस्था बनी रहती है। जैसे नीचे शब्दों में जो पहले आ चुके है; कहा है -

''सन्तो सहज समाधि भली।''
''भाई सोई सतगुरू सन्त कहावे, जो नैयनन अलख लखावै।''
''जीवन मुक्त सो ही मुक्ता हो, जब तक जीवत मुक्ता नाहिं।
तब लग दुःख-सुख भुगता हो।''

इन शब्दों में ज्ञानी के ज्ञान योग की रहनी है। वह कुछ यत्न नहीं करता। सब जो योग-साधना की चर्चा है, छोड़ देता है। और यह अनुभव अभी इसी ही जीवन में करता है।

❑❑❑

मेरा अनुभव व गुरूओं से विनम्र निवेदन

प्यारे पाठको ! यह पुस्तक मैंने अपने धर्म-कर्म के योग साधना के आधार पर अनुभव से लिखी है जो विशेष रूप से पूज्य गुरू-पीरों व साधन-अभ्यास करने वाले योगी, साधकों के लिए महत्वपूर्ण है। बुद्धिमान् सज्जन भी ध्यान से पढ़ने से इससे लाभ उठा सकते हैं। इससे उनके धर्म-कर्म सम्बन्धी बहुत से शंका, भ्रम, गलत-फहमी व अज्ञान दूर हो सकते हैं।

वैसे मैं कोई गुरू नहीं हूँ और न ही मेरा काई आश्रम या डेरा है। मैं किसी को चेला नहीं बनाता हूँ क्योंकि मेरी उम्र 83 साल की हो गई है और चेलों को शिक्षा देने में कुछ समय लगता है। दूसरी बात पूज्य महात्मा जो गुरूवाई करते हैं, उनकी सेवा मैं अपने योग्यतानुसार कर देता हूँ। और जो योगी व साधक जो बहुत दिनों से सूक्ष्म लोकों में योग साधना में उलझे हैं उनकी सेवा मैं सत्संग व पुस्तकों से कर रहा हूँ। सभी पूज्य गुरूओं के आश्रम मेरे ही हैं और पूज्य महात्मा सज्जन यदि अपनी संगत को समझ, विवेक, अनुभव व ज्ञान देना चाहें तो वे मेरी पुस्तकें मंगा कर पहले आप देख लें और यदि उचित समझें तो संगत में बटवा दें। और यदि संगत को अन्धेरे में ही रखना चाहें तो यह उनकी मर्जी है।

मेरा तो यही कहना है कि हम मन, वचन व कर्म से पवित्र होकर अपना कुछ काम करें। न तो ये डेरे या आश्रम हमारे साथ जायेंगे और न ही यह संगत। हमारे कर्म ही हमारे साथ जायेंगे। हम से पहले जो सन्त हुए हैं, उनके साथ भी यह डेरे, आश्रम, संगत नहीं गई तो हमारे साथ भी कुछ जाने वाला नहीं है। पूज्य महात्माओं जैसे कहा है-

दादू दावा मत कर, बिन दावे दिनकाट।
बहुतक सौदा कर गए, इस पंसारी की हाट।।

मैंने इस पुस्तक में आत्मा तत्व और परमात्मा तत्व व महातत्व के विषय में अपना अनुभव लिखा है। यह मेरा अनुभव है कोई दावा नहीं है कि यह ही सच्चाई है। यदि मैं कहीं भटक गया हूँ तो आप पूज्य महात्माओं से मेरी यह प्रार्थना है कि आप मेरा मार्गदर्शन करें, परन्तु वह हो आपका खुद का अनुभव। यह मैं किसी अहंकार के कारण नहीं कह रहा हूँ, अपितु यह मेरा विनम्र निवेदन है।

पूज्य महापुरुषों! अब समय बदल गया है। यदि हम भी अपना ज्ञान जो आज के मनुष्य के लिए आवश्यक है और जिस बात से आज का मानव पीड़ित है, उसी के अनुसार ही उसको समझ, विवेक व ज्ञान देंगे तो मानवता का कल्याण हो सकता है। अब तो वह हालत है कि दर्द तो सिर में है और दवा व पट्टी पैर की की जा रही है जिससे कोई फायदा होने वाला नहीं है। पुराने समय की घीसी-पीटी बातें जो आज सत्संगों में बताई जा रही है, उनसे कुछ लाभ मालूम नहीं हो रहा है। आप कृपया पहले मन, वचन व कर्म से पवित्र होकर खुद अनुभव करें और फिर अपने अनुभव के आधार पर मनुष्य की प्रकृति, संस्कार व परिस्थिति देखकर उसका मार्ग दर्शन करें तो वह ज्यादा अच्छा व प्रभावशाली होगा और प्रवचन भी आप अपनी मौलिक भाषा में दे तो सत्संगियों को अधिक लाभ होगा। वहीं पुरानी बात जो पहले कभी घटित हुई थी, उनकी ही चर्चा बार-बार करना लकीर पीटने वाली बात है। यदि आपका अनुभव हमारे स्वर्गीय महापुरूषों के साथ मेल खाता है तो उनके शब्द व पद्यांश का उदाहरणार्थ प्रयोग करना सोने में सुगन्ध वाली बात है। क्योंकि यह समय विद्या, बुद्धि व विज्ञान का है और आज का मानव हर बात का प्रमाण चाहता है। अत: अपने अनुभव के आधार पर उसे प्रमाणित कर दिया जाए तो लोगों का धर्म में विश्वास कायम रह सकता है। जैसे किसी सत्संग में एक वैज्ञानिक ने मुझसे यह प्रश्न किया कि धर्म में काल्पनिक बातें अधिक है और सच्चाई कम है। मैंने पूछा इसका उदाहरण देकर बताएं तो उसने कहा कि जैसे रामायाण में लिखा है कि जब हनुमान जी

लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी लाने गए तो बूटी का ज्ञान न होने के कारण वह पूरा पहाड़ ही उठा लाए। अब उस समय यदि हनुमान जी पहाड़ उठा सकते थे तो कम से कम आज का आदमी एक या दो पेड़ तो उठा कर दिखाए। मैंने उनको वैज्ञानिक तरीके से समझाया कि आप विदेशों में जाते हैं। वहां पर बन्दरगाहों पर बड़े-बड़े जहाजों में सामान डाला व निकाला जाता है। और उन्हें बाहर किनारे पर लाने के लिए बड़ी-बड़ी क्रेनों का प्रयोग किया जाता है तो आप बताए कि यह शक्ति क्या क्रेन में है ? उसने कुछ देर सोच कर कहा कि हाँ यह शक्ति क्रेन में है। तब मैंने कहा कि यह आपका भ्रम है क्योंकि क्रेन तो एक मशीन है। यह शक्ति तो मशीन को बनाने वाले मनुष्य में है। इसी प्रकार दूसरे विश्वयुद्ध में जापान में नागासाकी और हिरोसिमा पर जो बम फेंके गए थे, वह शक्ति भी बम बनाने वाले वैज्ञानिक में थी। इस प्रकार आज जो नई-नई शक्तियां पैदा की जा रही हैं वह मनुष्य के दिमाग की उपज है। इसलिए उस समय तो एक ही हनुमान था और आज चारों तरफ हनुमान ही हनुमान नजर आ रहे है। तो बात स्पष्ट है कि पहले लोगों को अन्धविश्वास था और वे बात को जैसे कहा जाता था, वैसे ही मान लेते थे, परन्तु आज का आदमी प्रमाण वाली बात को स्वीकार करता है। अत: यह सब शक्ति मनुष्य के मन में है। अपने मन की शक्ति से आदमी जो चाहे वह कर सकता है।

मैंने अध्यात्म के विषय में दो-तीन बात अपने अनुभव के आधार पर नई व स्पष्ट लिखी हैं जो पहले रहस्य में बताई गई है।

1. परम दयाल पं. फकीरचन्द जी की संगत व विकिरण धारा (Radiation) के प्रभाव से कुछ ही मिनटों में उस निज नाम या सार शब्द का अन्दर में अनुभव हो जाना जिसके लिए बहुत जप, तप, पूजा-पाठ व योग साधना करनी पड़ती है। और तब से लेकर आज तक इस नाम की अनुभूति का सहज में बना रहना जिसमें मुझे कुछ करना, धरना नहीं पड़ता।

2. अन्तर में उस सार शब्द को सुनते-सुनते सुरत का उसमें लय हो जाना जिसमें कुछ कहने सुनने की बात ही नहीं रहती। क्योंकि जब तत्व तत्व में मिल जाएगा तो वह क्या कहेगा? वह तो उसी का रूप बन जाता है। जैसे बून्द जब समुद्र में मिल जाए तो वह समुद्र का ही रूप बन जाती है। यह अनुभव मुझे अभी तक दो बार हुआ है।
3. विश्वासी या साधकों को जगह-2 मेरे रूप का प्रकट होना और तरह-2 से उनकी सहायता करना और मुझे इस बात का ज्ञान न होना कि मेरे रूप ने कब किसकी मदद की ? धर्म में यह सबसे बड़ा रहस्य है जिसे स्पष्ट नहीं किया जा रहा है। यदि मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाए कि उसके अन्दर जिस देवी-देवता या गुरू-पीर के रूप ने प्रकट होकर उसकी सहायता की है, वह उसी के मन की शक्ति का खेल है, बाहर से कुछ आता-जाता नहीं है तो आश्रमों की यह भीड़ कम हो सकती है और मनुष्य बाहरी कर्मकाण्ड व भटकन को छोड़कर अपने अन्दर स्थित परमात्मा को किसी सच्चे गुरू के निर्देशन में येाग-साधना से प्राप्त कर सकता है।

मैंने कई पूज्य गुरूओं को पत्र लिखकर व जुबानी पूछा है कि क्या वे अपने शिष्यों में प्रकट होकर उनकी मदद करते हैं ? तो वह यही कहते हैं कि यह उस भक्त के विश्वास का ही खेल है परन्तु अपने सत्संगों में यह साफ बात कोई भी हाजिर गुरू नहीं कहता है और यदि कोई हाजिर गुरू या महात्मा खुद अपने चेलों में जाकर प्रकट होकर उनकी सहायता करता है तो वह इसे बताए। अब गए हुए गुरू, पीर या देवी-देवता तो आकर यह बात बता नहीं सकते हैं। वास्तव में सच्चाई यह है कि ये जितने भी रंग-रूप मनुष्य को नजर आते है, वह उसका मन ही है। अब इस रहस्य को महापुरूष अपने सत्संगों में क्यों नहीं बता रहे हैं ? इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि इस सच्चाई के पता लगने से उनको इतना मान-सम्मान नहीं मिल

सकता है जो अन्धविश्वास में अधिक मिलता है। दूसरा धन भी मनुष्य अज्ञान में अधिक देता है कि गुरू जी ने मेरा यह किया, वह किया। तीसरी बात आश्रमों में भीड़ कम हो जायेगी। मेरी समझ के अनुसार यह तीन मुख्य कारण है जिस वजह से आज के हाजिर सन्त सज्जन यह बात जीव को साफ नहीं बता रहे हैं और कोई कुछ कहता भी है तो सैन-बैन में कह देता है। चौथी बात यह भी हो सकती है कि शायद इस अनुभव तक गुरूवाई करने वाले सज्जन खुद ही न पहुँचे हों। अपनी बुद्धि, समझ तथा होशियारी से गुरूगद्दी पर शुभ कर्मों के प्रताप से बैठे हों। धर्म के सही ज्ञान से, शिव संकल्प रखने से व समझ-विवेक से नकारात्मक विचार छोड़ने से मनुष्य इस लोक का जीवन सुन्दर व सुखमय तरीके से जी सकता है।

अध्यात्म ज्ञान में मुख्य साधन ध्यान करना है। यह ध्यान का योग ही शुरू से इस संसार के स्थूल लोक की सफलता, ऋद्धि-सिद्धि की शक्ति व मन को सुख-शान्ति देने तथा सूक्ष्म लोकों के अनुभव, ज्ञान व आनन्द देने का सहारा है। लेकिन यह सफलता तभी मिल सकती है जब ध्यान की विधि सीखाने वाले महात्मा सज्जन खुद पूर्ण अनुभवी हों। क्योंकि ऐसे महात्मा की Radiation शिष्यों पर सीधा प्रभाव डालती है और साथ ही दूसरी शर्त यह है कि जो भक्त ध्यान सीखते हों, उनके मन में पूर्ण लगन हो। इस ध्यान की सफलता श्रद्धा, विश्वास रखने वाले सज्जन को बहुत जल्दी मिलती है। परन्तु यह बात सबके लिए नहीं कह सकते क्योंकि यह विशेष सज्जनों में हो सकती है, आम मनुष्य की बात नहीं है। जैसे राधास्वामी वाणी में गुरू शिष्य के लक्षण बताए हैं -

गुरू की पहचान -

गुरू सो ही जो शब्द स्नेही, शब्द बिना दूसर नहीं सेही।
शब्द कमावे वह गुरू पूरा, उन चरणन की बन जा धूरा।।
शब्द भेद लेकर तुम उनसे, शब्द कमाओ तुम तन मन से।।

शिष्य की पहचान -

विषयन से जो होय उदासा, परमार्थ की जा मन आशा।
धन सन्तान प्रीत नहीं जा के, खोजत फिरे साध गुरू ताके।
विरह बाण जिन हृदय लागा, तन इन्द्री आसक्त नहीं होई।।

यह तो वाणी की बात है जो किसी विशेष पर ही लागू है। अत: जिन भाईयों को अध्यात्म का शौक हो, पूर्ण लगन या विचार से मन में तड़फ हो तो सब काम आसान हो जाते हैं। अभ्यास करके अन्तर के शब्द-प्रकाश के अनुभव में अभ्यासी व योगी बहुत जल्दी पहुँच सकता है। मेरे सत्संग में कई घटना ऐसी घटी हैं कि कई सज्जन एक बार सत्संग में आए और उनका अन्दर का शब्द खुल गया किसी का प्रकाश खुल गया। परन्तु ध्यान रहे प्रकाश तो केवल उनका ही खुलेगा जिनका शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य कायम होगा। ऐसे सज्जन पहले से ही तैयार होते है। उनको इस साधना की तड़फ या लगन होती है। जब किसी पूर्ण अनुभवी के दर्शन और वचन सुनते हैं तो अपने आप सहज ही उसे अनुभव हो जाता है। मेरे खुद के साथ भी यह घटना घटी हुई है। परन्तु आम आदमी के लिए नाम का सहज ही सुमिरन और गुरू स्वरूप के ध्यान से धीरे-धीरे एक दिन यह अन्दर का अनुभव खुल जायेगा। चिन्ता या जल्दबाजी न की जाए। आस, विश्वास, धैर्य व सन्तोष रखना जरूरी है। जो कुछ भी जिस किसी को मिलता है, वह उसी के आस-विश्वास का फल है। मालिक पर पूर्ण भरोसा रखे। जैसे कहा है -

जिसने बन्धन में फंसाया है छुड़ायेगा वही।
जाल माया मोह का आकर कटायेगा वही।।

गर्भ में माता के जो, रक्षक बना था हर घड़ी।
जागता जीता पुरुष, अब भी बचायेगा वही।।

सोच क्यों करता है और इस सोच से क्या लाभ है?
तेरी करनी लाभ का कारण बनायेगा वही।।

ध्यान कर सुमिरन भजन कर, मन में उसकी आस कर।
हो के प्रकट भीतर और बाहिर चितायेगा वही।।

तन में तेरे मन में तेरे, तेरे सांसों सास में।
रह के अपना रूप भी तुमको दिखायेगा वही।।

घट में है वह पट में है, वह संसार के खटपट में है।
तुमको क्यों चिन्ता है, खटपट को मिटायेगा वही।।

राधास्वामी नाम ले और नाम में विश्राम ले।
नाम की धुन राग अनहद में सुनायेगा वही।।

इस संसार में मांग और पूर्ति का नियम काम करता है। Where there is will, there is way ''जित्थे चाह, उत्थे राह।'' यह प्रकृति का नियम है। इसी ही नियम के अनुसार परमात्मा मनुष्य के रूप में आकर संसार में जिस बात या चीज की जरूरत होती है, करता रहता है। वह पीर, पैगम्बर, ऋषि, मुनि, वैज्ञानिक, समाज सुधारक व कलाकार के रूप में आकर अपनी दुनिया को सुन्दर बनाता रहता है। यहां खेल सब उसी का है। अत: अपने आप में सच्चे बनकर उस मालिक से प्रार्थना करो, उसके घर कोई कमी नहीं है –

फैज का दर है खुला, बन्द नहीं हरगिज।
शर्त यह है कोई मांगने साहिल आए।।

❑❑❑

अनुभव पर आधारित मेरी पुस्तकें

मेरी अभी तक 9 पुस्तकें छप चुकी हैं जिन्हें डॉ. कमला ने कई सज्जनों की सहायता से छपवाया है। मैंने इन पुस्तकों में मानवता धर्म, मजहबे इन्सानियत व Religion of Humanity के लिए धर्म–कर्म के विषय पर अपना अनुभव लिखा है। सबसे पहले तो हम इस संसार में सुखी जीवन जीने की बात सीखें जो अधिकतर शिव संकल्प यानी सुन्दर–सुन्दर व आशावादी विचारों पर ही आधारित है, परन्तु इसके लिए किसी पूर्ण महात्मा की संगत व सत्संग की आवश्यकता है और महात्मा भी हमारी ही तरह गृहस्थी होना चाहिए, ब्रह्मचारी या सन्यासी नहीं क्योंकि ब्रह्मचारी सन्यासी गृहस्थियों की तकलीफ या दु:ख को नहीं समझ सकता है। वह तो सीधा भगवान् से मिलने की बात करेगा जबकि गृहस्थी सांसारिक दु:खों से अधिक दुखी है। भगवान् तो हमारे एडी से चोटी तक शरीर में हाजिर है। हम तो यहां इस दुनिया के जीवन में तंग या दु:खी हैं। हमको यहां सुख–समृद्धि चाहिए। अत: जो महात्मा हमको इस दुनिया में सुखी होने का तरीका बताकर सुखी कर दे, हमें उस महात्मा की तलाश करनी चाहिए। उसके दर्शन और वचन से हमको सुख व शान्ति मिलेगी। मुझे इसी ही तरह अपने किसी शुभ कर्म के प्रताप से पं. फकीरचन्द जी महाराज के आशीर्वाद से अध्यात्म ज्ञान के योग की सहज विधि मिल गई थी। उस योग के साधन से मुझे जो भी अनुभव हुआ, उसे मैंने पुस्तकों में लिख दिया है। जिनका विवरण इस प्रकार है –

1. **लाल कमल :** इस पुस्तक में डॉ. कमला व आचार्य उमेश चन्द्र वर्मा के नाम पर लिखे गए ज्ञान से भरपूर छोटे–छोटे पत्र हैं जो सभी के लिए लाभदायक सिद्ध होंगे।
2. **सहज योग :** यह डॉ. कमला के द्वारा रिकार्ड किए गए 20 सत्संगों का संग्रह है। इसमें मैंने परम सन्त ताराचन्द जी व कंवर सिंह जी के आश्रम में गाए हुए शब्दों के आधार पर

अपने अनुभव से व्याख्या की है।

3. **सुखी जीवन का रहस्य :** यह पुस्तक नवयुवक व युवतियों के लिए विशेष लाभदायक है। इसमें मैंने सन्तान उत्पत्ति के विषय में विशेष ज्ञान दिया है कि माँ जैसी सन्तान चाहे, वैसी पैदा कर सकती है जिससे उन्हें कभी अपनी सन्तान से कोई शिकायत नहीं होगी।

4. **मानव धर्म व अध्यात्म ज्ञान :** यह पुस्तक मानवता धर्म व जप, तप, पूजा-पाठ आदि कर्म पर विशेष प्रकाश डालती है। इसको पढ़ने से धर्म-कर्म का ज्ञान व समझ प्राप्त होगी।

5. **मानव जीवन का सुखमय सफर** - मनुष्य रोज-रोज जीवन का सफर करता है परन्तु अज्ञान के कारण दु:ख, चिन्ता व कई तरह की कठिनाइयों में जीवन जीता है। इस पुस्तक में आपको जीवन का सफर सुख में, हंसते-खेलते करने की विधि समझ में आयेगी।

6. **मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म** - इस पुस्तक में कर्त्तव्य पर प्रकाश डाला गया है जो अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता, वह धर्मात्मा नहीं हो सकता है।

7. **प्रश्नोत्तरी ज्ञान-गंगा** - यह पुस्तक योगी व साधकों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके पढ़ने से योग-सम्बन्धी सभी शंका व भ्रमों का निवारण हो सकता है।

8. **मेरी धार्मिक खोज** - इस पुस्तक में मैंने अध्यात्म सम्बन्धी अनुभव व सहज योग की चर्चा की है।

9. **ज्ञानयोग** - इस पुस्तक में ज्ञान-प्राप्ति के लिए सभी आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला गया है।

इन पुस्तकों को ध्यान से पढ़ने पर आपको धर्म-कर्म के विषय में कोई शंका व भ्रम नहीं रह सकता है। फिर तो केवल खुद के अनुभव करने की बात होगी और जो बहन-भाई पढ़े लिखे नहीं है, उनके लिए आसान बात यह है कि वे मन ही मन यह विचार रखें

कि हे परमात्मा। आप दयालु हैं। आप दया करके मुझे किसी सच्चे और पूरे महात्मा से मिलवाओ जिसकी संगत से मुझे इस संसार में सुख, खुशी व आनन्द मिले और मेरा मनुष्य जन्म सफल हो जाए क्योंकि विचार में बहुत शक्ति है। जो भी सच्चे मन से जैसी इच्छा करता है वैसा ही उसे मिल जाता है। परमात्मा आपको आपकी इच्छानुसार किसी महात्मा के वेष में मिल जायेगा और आप निहाल हो जाओगे। आपको बहुत ही आसान और छोटा सा ढंग बता दिया है। बस यह इच्छा या विचार आपने रखना है। जिससे पूरा और सच्चा महात्मा मिल जायेगा तब उसके सत्संग से आपकी यह दुनिया सुखमय बन जायेगी।

शब्द

गुरू मोहि अपना रूप दिखाओ।

यह तो रूप धरा तुम सरगुण, जीव उबार कराओ।
रूप तुम्हारा अगम अपारा, सोई अब दरसाओ।।

देखूं रूप मगन होय बैठू, अभय दान दिलवाओ।
यह भी रूप प्यारा मोको, इसी ही से उसको समझाओ।।

बिन इस रूप काज नहिं होई, क्यों कर वाहि लखाओ।
ताते महिमा भारी इसकी, पर वह भी लखवाओ।।

वह तो रूप सदा तुम धारो, या ते जीव जगाओ।
यह भी भेद सुना में तुम से, सुरत शब्द मार्ग नित जाओ।।

शब्द रूप जो रूप तुम्हारा, वा में भी अब सुरत पठाओ।
डरता रहूं मौत और दुख से, निर्भय कर अब मोहि छुड़ाओ।

दीन दयाल जीव हितकारी, राधास्वामी काज बनाओ।।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

❑❑❑

अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	प्रथम संस्करण	द्वितीय सं०	तृतीय सं०
1.	लाल कमल	1000 प्रतियां 4/03	2000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 12/06
2.	सहज योग	2000 प्रतियां 8/03	3000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 7/07
3.	सुखी जीवन का रहस्य	3000 प्रतियां 10/03	4000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 2/07
4.	मानव धर्म व अध्यात्म ज्ञान	4000 प्रतियां 1/04	4000 प्रतियां 9/05	---
5.	मानव जीवन का सुखमय सफर	4000 प्रतियां 3/04	4000 प्रतियां 9/05	---
6.	मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म	4000 प्रतियां 6/04	4000 प्रतियां 2/07	---
7.	प्रश्नोत्तरी ज्ञान गंगा	4000 प्रतियां 10/04	4000 प्रतियां 2/07	---
8.	मेरी धार्मिक खोज	4000 प्रतियां 5/05	4000 प्रतियां 10/05	---
9.	Secret of Happy Life	2000 प्रतियां 4/05	4000 प्रतियां 2/07	---
10.	ज्ञान योग	4000 प्रतियां 4/06	4000 प्रतियां 9/07	---
11.	तत्व ज्ञान दर्पण	4000 प्रतियां 5/06	4000 प्रतियां 9/07	---
12.	योग मणि	4000 प्रतियां 6/07	---	---
13.	कैलेण्डर	1000 प्रतियां 3/04	2000 प्रतियां 10/05	4000 प्रतियां 2/07